PUNJABI UNIVERSITY PATIALA

डिस्टेंस एजुकेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला
(सर्वाधिकार सुरक्षित)

बी॰ए॰ (हिन्दी) भाग-प्रथम सैमेस्टर-।

एकांश संख्या : 1, 2

विषय सूची

हिन्दी साहित्य का इतिहास

एकांश–1

1.1 आदिकाल : नामकरण, परिस्थितियाँ, प्रवृत्तियाँ

1.2 चन्दबरदाई और पृथ्वी राजरासो

1.3 संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण : परिभाषा और भेद

खण्ड 'दीपिका'

1.4 जयशंकर प्रसाद

1.5 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

1.6 सुमित्रानंद पंत

1.7 अज्ञेय

1.8 सर्वेस्वरदयाल सक्सेना

1.9 केदारनाथ सिंह

एकांश–2 **खण्ड–उपन्यास 'थके पाँव'**

2.1 हिन्दी उपन्यास : स्वरूप और विकास

2.2 'थके पांव' उपन्यास का सार

2.3 'थके पांव' : चरित्र चित्राण

2.4 'थके पांव' : परिवेश तथा संरचना शिल्प, प्रतिपाद्य और सप्रसंग व्याख्या

नोट : विद्यार्थी सलेबस विभाग की वैबसाईट www.pbidde.org से डाउनलोड करें।

पाठ संख्या : 1.1 **लेखिका : डॉ. एस.के. खुमार**

हिन्दी साहित्य का इतिहास

रूपरेखा

1.1.0 उद्देश्य
1.1.1 प्रस्तावना
1.1.2 हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन
    1.1.2.1 आदिकाल का नामकरण
    1.1.2.2 आदिकाल की परिस्थितियाँ
    1.1.2.3 साहित्यिक रचनाएं
    1.1.2.4 आदिकाल के साहित्य की विशेषताएं
    1.1.2.5 प्रमुख कवि
1.1.3 सारांश
1.1.4 शब्दावली
1.1.5 अभ्यास के लिए प्रश्न।

1.1.0 उद्देश्य :

इस पाठ में हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन एवं आदिकाल के साहित्य की विशेषताओं पर विचार किया गया है। इस पाठ के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि :

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल–विभाजन के विषय में विद्वानों के क्या मत हैं
- आदिकाल का नामकरण किस आधार पर हुआ
- आदिकाल के साहित्य की विशेषताएं क्या हैं; और
- आदिकाल में किन प्रसिद्ध कवियों ने साहित्यिक रचनाएं की।

1.1.1 प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य का इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। हिन्दी आरम्भ में सामान्य बोलचाल की भाषा थी। परन्तु धीरे–धीरे विकसित हो कर वह साहित्यिक भाषा बनी। हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूप उत्पन्न हुए। ब्रज भाषा, खड़ी बोली, राजस्थानी तथा मैथिली आदि विभिन्न बोलियां हिन्दी के जन्म एवं विकास का मूल आधार बनी। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा में संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के अनेक शब्दों का ग्रहण किया। इससे वह समृद्ध हुई। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि हिन्दी भाषा का जन्म संस्कृत या अपभ्रंश से हुआ। वह तो केवल इन भाषाओं की ऋणी हैं। क्योंकि साहित्यिक भाषा से बोली का जन्म नहीं होता वरन्

बोली से ही साहित्यिक भाषा का जन्म और विकास होता है और हिन्दी अपने मूल रूप में एक बोली ही थी वह क्रमशः साहित्यिक भाषा के रूप में परिवर्तित होती गई।

हिन्दी साहित्य का आरम्भ ग्यारहवीं शताब्दी से माना जाता है। पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी तथा राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश को ही 'पुरानी हिन्दी' माना है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य का आरम्भ सातवीं शताब्दी से स्वीकार किया जा सकता है। अपभ्रंश भाषा का गठन तथा व्याकरण हिन्दी से सर्वथा भिन्न है। इसलिए अपभ्रंश की रचनाओं को किसी प्रकार भी हिन्दी साहित्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

ग्यारहवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी तक का हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास एक हजार वर्ष का है। शताब्दियों से विभिन्न प्रवृतियों का जन्म एवं विकास होता रहा है, साथ ही प्रवृतियां परिवर्तित भी होती रही हैं। हिन्दी साहित्य के एक हजार वर्ष के लंबे इतिहास में भी निम्नलिखित प्रवृतियां प्रधान रहीं।

(1) वीरता की, (2) भक्ति की, (3) शृंगार तथा राष्ट्रीय चेतना की

वीरगाथाकाल

हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रथम काल है। इसे आदिकाल, चारणकाल, सन्धिकाल आदि नामों से अभिहित किया जाता है, इस अध्याय में हम इस काल का विभिन्न पक्षों से विस्तृत अध्ययन करेंगे।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल

हिन्दी साहित्य का प्रारम्भिक काल–जिसे आदिकाल, वीरगाथाकाल, चारणकाल आदि अनेक संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है। यह हिन्दी साहित्य का सबसे अधिक विवादग्रस्त काल है। ''शायद ही भारतवर्ष के साहित्य के इतिहास में इतने विरोधी और स्वतो व्याद्यातों'' का युग कभी आया होगा। इस काल में एक तरफ तो संस्कृत के ऐसे बड़े–बड़े कवि उत्पन्न हुए जिनकी रचनाएं अलंकृत काव्य परंपरा की चरम सीमा पर पहुंच गई थी और दूसरी और अपभ्रंश के कवि हुए जो अत्यन्त सहज–सरल भाषा में अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में अपने मार्मिक भाव प्रकट करते थे।'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान ने भी इस काल की जटिलताओं को स्वीकार करते हुए लिखा है–''इस काल की कहानी को स्पष्ट करने का प्रयत्न बहुत दिनों से किया जा रहा है तथापि उस का चेहरा अब भी अस्पष्ट हो रहा है।''

1.1.2 हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन

हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक सुदीर्घ परम्परा है जिसमें युग के अनुरूप साहित्य धारा विकसित होती रही है– इसका एक साथ अध्ययन कर पाना कठिन है, इसीलिए विभिन्न कालों एवं युगीन प्रवृतियों को आधार बनाकर इसे विभिन्न खंडों में बांटा गया है इससे इसका अध्ययन करना सरल हो जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों में सर्वप्रथम डा ग्रियर्सन ने अपने ग्रंथ दी–मार्डन वर्नाक्यूलर ऑफ हिन्दुस्तान में विभिन्न अध्यायों को काल के अनुसार विभाजित करने का प्रयास किया। इनके बाद मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रंथ मिश्रबन्धु विनोद में हिन्दी साहित्य के लम्बे इतिहास को पाँच भागों में बाँटकर फिर उन्हें नौ उपखंडों में विभाजित किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया काल विभाजन उचित माना जाता है। इनके अनुसार हिन्दी साहित्य को इतिहास का पहला काल वीरगाथाकाल कहलाया, जिसे बाद में आदिकाल का नाम दिया गया। इसका समय संख्या 1050 से संख्या 1375 तक माना गया। शुक्ल जी के अनुसार दूसरा काल पूर्वमध्यकाल है जिसे भक्तिकाल भी कहते हैं। इसका समय संख्या 1375 से संख्या 1700 तक का है। तीसरा काल उत्तर मध्यकाल कहलाया जिसे रीतिकाल भी कहते हैं। इसका समय संख्या 1700 से 1900 तक का है जिसे गद्यकाल भी कहते हैं। इसका समय 1900 से आज तक का माना जाता है।

शुक्ल जी के अतिरिक्त रामकुमार वर्मा, धीरेन्द्र वर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि विद्वानों ने भी काल–विभाजन सम्बन्धी अपने मत दिए। इतिहास लेखन परम्परा में डॉ जनसंख्यागणपतिचन्द्र गुप्त ने 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' नामक ग्रंथ की रचना की है। इन्होंने साहित्य के इतिहास का कालविभाजन करते हुए साहित्य के इतिहास के पहले काल को प्रारंभिक काल या उन्मेष काल (1184-1350 ई.) का नाम दिया। दूसरे काल को मध्यकाल या विकास काल (1350 से 1857 ई.) का नाम दिया। गुप्त जी ने इस काल को उपखंडों में भी विभाजित किया। पहले उपखंड को पूर्वमध्यकाल या उत्कर्ष काल (1350-1500 ई.) दूसरे उपखंड को मध्यकाल या चरमोत्कर्ष काल (1500-1600 ई.) तीसरे उपखंड को उत्तर मध्यकाल या उपकर्ष काल (1600-1857 ई.) का नाम दिया। इन्होंने तीसरे भाग को आधुनिक काल का नाम दिया और इसका समय (1857-1965 ई.) तक स्वीकार किया।

विभिन्न इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य के काल–विभाजन के सम्बन्ध में विभिन्न मत दिए हैं जिनके आधार पर एक काल विभाजन सर्वमान्य हैं। इसके अनुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रथम काल आदिकाल (सं.1050 से स. 1375) द्वितीय काल भक्तिकाल (स. 1375 से स. 1700) तृतीय काल रीतिकाल (स. 1700 से 1900) और चतुर्थ काल आधुनिक काल (1900 से आज तक) माना जाता है।

1.1.2.1 आदिकाल का नामकरण :

आदिकाल की अनेक समस्याओं में से सर्वप्रथम तो उसके नामकरण की है। सबसे पूर्व मिश्रबन्धुओं ने उसे 'आदिकाल' के नाम से पुकारा, किंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग में वीरगाथात्मक रचनाओं की प्रधानता बताते हुए इसे 'वीरगाथा काल' नाम दिया। किंतु वास्तविकता यह है कि शुक्ल जी के द्वारा उल्लिखित वीरगाथाओं –खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद प्रकाश, जय–मयंक, जस–चंद्रिका और परमाल रासो–में से कुछ तो परवर्ती युग में रचित सिद्ध हो चुकी हैं (जैसे खुमान रासो वपरमाल–रासो) : कुछ अप्रमाणिक (पृथ्वीराजरासो) है, कुछ वीररस से शून्य प्रेमकाव्य (बीसलदेव रासो) है और कुछ का अस्तित्व ही नहीं है। अतः इसे 'वीर गाथा काल' कहना निरर्थक सा है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने सम्भवतः शुक्ल जी की इस धारणा से प्रभावित होकर कि इन वीरगाथाओं के रचयिता राज्यश्रित चरण थे, इसे 'चारणकाल' की संज्ञा दी है। किंतु इस युग के अंतर्गत उन्होंने जिन रचनाओं को स्थान दिया, उनमें से अधिकांश सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक में रचित है और जो रचनाएं इस काल की सीमा में आती हैं, उनमें किसी का भी रचयिता कोई चारण नहीं है। यह तथ्य स्वयं डॉ. वर्मा द्वारा रचनाओं के लिए दिए गए परिचय रचनाकाल एवं रचयिता से ही सिद्ध हो जाता है, आश्चर्य है कि असंगति उनके ध्यान में नहीं आई।

श्री राहुल सांस्कृत्यायन ने अपभ्रंश और हिन्दी को एक ही भाषा मानते हुए इस काल का नामकरण 'सिद्ध–सामंत युग' किया है। 'सिद्ध वज्रयानी सिद्धों' की अपभ्रंश रचनाओं का प्रतीक है और 'सामन्त' हिन्दी के वीर–रसात्मक साहित्य का सूचकः किंतु उनके मत को स्वीकार करने में भी आपत्तियां हैं। एक तो अपभ्रंश और हिन्दी को एक मानना ही अनुचित है, अन्यथा आधुनिक युगीन प्रांतीय भाषाएं–गुजराती, बंगला, मराठी आदि जो अपभ्रंश से विकसित हुई हैं, हिन्दी की ही शाखाएं सिद्ध हो जाएगी। संम्भवतः हिन्दी प्रेमी जनता इसे स्वीकार कर ले, किंतु अन्त प्रांतीय भाषाओं के समर्थक इसे कभी मानने को तैयार नहीं होंगे। इस स्थिति में इस युग का नाम सिद्ध सामन्त युग ही नहीं, ''जैन सिद्ध सामन्तादि युग'' रखना होगा, क्योंकि इस युग के सबसे बड़े कवि जैन हैं।

इस समस्या के समाधान में आचार्य हजारीप्रसाद जी ने भी योग देते हुए लिखा है कि ''वस्तुतः हिन्दी का 'आदिकाल' शब्द एक प्रकार की भ्रामक धारणा की सृष्टि करता है और श्रोता के चित्त में यह भाव पैदा करता है कि यह काल कोई आदिम मानोभावापन्न, परंपरा–विनिमुक्ति, काव्य रूढ़ियों से अछूते साहित्य का काल

है, यह ठीक नहीं है। यह काल बहुत अधिक परम्परा–प्रेमी, रूढ़िग्रस्त बुरा नहीं है।'' यह इस काल का दुर्भाग्य है कि हमारे चोटी के इतिहासकारों के पचास वर्ष के दीर्घ प्रयत्न के पश्चात भी इसे कोई निर्भ्रान्त नाम नहीं मिल सका।

1.1.2.2 आदिकाल की परिस्थितियां

यह सर्वमान्य तथ्य है कि साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति एवं गतिशील चेतना की सार्थक अभिव्यक्ति है। इसलिए उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का विशेष महत्व है। भले ही आज साहित्य को समाज का प्रतिबिंब मानने में मतभेद है पर इनके पारस्परिक सम्बन्ध को सभी मानते हैं। अतः युगी परिवेश और परिस्थितियों को समझें बिना किसी काल के साहित्य की पहचान नहीं की जा सकती। आदिकाल साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियों से पूर्व इस काल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझना अपेक्षित है।

राजनीतिक परिस्थिति :

यदि आदिकाल की अवधि 769 ई. से 1418 ई. तक मान ली जाए तो इस काल की राजनीतिक परिस्थिति वर्धन साम्राज्य के पतन से आरम्भ होती है। भारत के प्रसिद्ध सम्राट, हर्षवर्धन की मृत्यु के अनन्तर देश में राजनीतिक स्थिरता प्रायः समाप्त हो गई और विशेषतया हिन्दी क्षेत्र में तो राजनीतिक हलचल अधिक तीव्र हो गई। एक केंद्रीय शक्ति के अभाव में प्रत्येक राजवंश अपनी–अपनी शक्ति के प्रसार में जुट गया। जागीरदार और सामन्त स्वतंत्र शासक बन गए और सामान्य सी बातों पर भी परस्पर युद्ध छिड़ जाते थे। राजनीतिक सत्ता के अभिमान के कारण राष्ट्र भक्ति की भावना सुदृढ़ होते हुए भी कुछ कोसों के क्षेत्रफल तक सीमित हो गई थी।

भारतीय शासकों की इस आन्तरिक फूट और कलह के कारण विदेशी शक्तियों के तीव्र आक्रमण होने लगे। यद्यपि इस काल से पूर्व भी भारत पर यूनानियों, शकों और हुणों ने आक्रमण किए थे, परंतु वे हर बार पराजित हो गए थे और जो भारत में रहे उन्होंने भारत को अपना देश स्वीकार कर लिया था। परंतु आठवीं शताब्दी के बाद विदेशियों ने भारत पर पुनः आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उत्तर और पश्चिमी भारत में विदेशी आक्रमणकारियों ने खूब लूटमार की। एक राजा के क्षेत्र पर आक्रमण होने से दूसरे देशी राजा अपने मन में प्रसन्न होते और निरपेक्ष रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशी आक्रमणकारी राजाओं के राज्य हड़पने लगे। जिससे विदेशी सत्ता शक्तिशाली बनने लगी। महमूद गजनवी ने भारत पर 10 बार आक्रमण करके खूब धन लूटा। तदनंतर मुहम्मद गौरी ने कई आक्रमण भारत पर किए परंतु दिल्ली के शासक पृथ्वीराज के मौसेरे भाई जयचंद ने ही मुहम्मद गौरी का साथ दिया और पृथ्वीराज चौहान पराजित होकर पकड़ा गया। इस प्रकार की राजनैतिक परिस्थितियों में साहित्य के क्षेत्र में स्वतंत्र चिंतन का अभाव ही रहा। अलग क्षेत्रों में विभिन्न अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ और तत्कालीन साहित्य लिखा जाने लगा तथा राजाश्रयों के कारण साहित्य में वीरभावना की प्रमुखता हो गई। आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्र में आत्मचिंतन, सिद्धियों और धार्मिक प्रवृतियों का साहित्य लिखा जाने लगा।

सामाजिक स्थिति :

आदिकाल में सामाजिक स्थिति जातीय कट्टरता की भावना से जकड़ी हुई थी। राजाओं तथा सामान्य लोगों में ऊंच–नीच का भाव विद्यमान था। जातियों में विवाह उत्सव आदि में भेदभाव के अनुसार ही लेन–देन होता था। बड़े–बड़े धनपति अपने से छोटे लोगों को अपना सेवक बनाकर रखते थे। अनेक प्रकार की सामाजिक रूढ़ियों की कट्टरता से पालन होता था। बहुविवाह, बालविवाह, सती प्रथा जैसी प्रथाएं प्रचलित थीं। उच्चवर्ग

में भोग–विलास और निचले वर्गों में अधिक दुर्दशा व्याप्त थी। गरीबों के परिश्रम पर सामन्त वर्ग विलास का जीवन व्यतीत करता था, नारी को केवल विलास का साधन माना जाता था। विदेशी आक्रमणों के कारण समाज में संकुचित मनोवृत्तियां बढ़ती जा रही थी। राजाओं और धनी वर्गों में भेद भावना से पारिवारिक शत्रुता का बोल–बाला था।

धार्मिक परिस्थितियां :

समाज में धर्म के प्रति आस्था थी परंतु आदिकाल में अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का प्रभाव था। जैन बौद्ध धर्म के अतिरिक्त सिद्धों और नाथ पंथियों के सिद्धान्त का भी प्रचार था। शांक्य मत वाले भी सामान्य लोगों में अपना धर्म प्रचार करते थे। वैदिक धर्म के साकार और निराकार उपासना के केंद्र भी यथावत चल रहे थे। राजाओं के पूजागृहों में सनातन धर्म के प्रचार था। वे भवानी शंकर, महावीर, हनुमान, राम आदि के उपासक थे। सन्यासियो में निराकार की उपासना का ज़ोर था। धर्म के नाम पर अनाचार और आडम्बर भी होता था। वैदिक और पौराणिक धार्मिक आदर्शों की भांति बौद्ध और जैन धर्म भी मूल आदर्शों से परे हट गए थे और जन्त्र–तन्त्र एवं सिद्धियों में विश्वास करने लगे थे। वैष्णव मत के प्रचारकों के प्रति जनता में श्रद्धा भावना अधिक थी। इसीलिए आदिकाल में विधिमत और सम्प्रदाय धर्म के नाम पर अपना कार्य करते जा रहे थे।

साहित्यिक परिस्थितियां :

राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव से ही साहित्य रचना का क्षेत्र भी प्रभावित था। राज्याश्रय में रहने वाले चारण और भाट राज्य की स्तुतिपरक रचनाएं लिख रहे थे। इसी लिए प्रबंध काव्य, खंड काव्य और वीरगति भी उस समय लिखे गए। कुछ वैद्यक के ग्रंथों के रचना भी हुई। सिद्धों और नाथों ने आत्मिक चिंतन और सिद्धियों के ग्रंथ लिखे। रस या रासो साहित्य भी लिखा गया। जम्भू स्वामी रास, बाहुबली रास इस क्षेत्र के प्रसिद्ध रास ग्रंथ हैं। साहित्यिक ग्रंथों की रचना परम्परा संस्कृत काव्य रचना से प्रभावित थी। उस काल के अनेक गद्य ग्रंथ भी मिल गए हैं। इन साहित्यिक रचनाओं की भाषा के कई रूप हैं। डिंगल, पिंगल, भाषाओं के अतिरिक्त अपभ्रंश मागधी, अर्धमागधी, कन्नौजी, मैथिली, खड़ी बोली, अवधि आदि भाषाओं के ग्रंथ मिलते हैं, जो क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य लिखने की प्रवृत्तियों को प्रकट करते हैं। इन सब भाषाओं के मेल से भाग का स्वरूप उभर रहा था। इन सब स्थितियों के कारण कहा जा सकता है कि राजाश्रयों में तो प्रबंध काव्य, एवं गीतिकाव्य लिखे जा रहे थे और स्वतंत्र चिंतक तथा धार्मिक विचारक आध्यात्मिक और सिद्धियों से युक्त रचनाएं लिख रहे थे। जैन धर्म के साधु प्रबंधात्मक एवं जीवनी साहित्य में धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे।

1.1.2.3 आदिकाल की साहित्यिक रचनाएं :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक रासो काव्यों से पूर्व लिखी गई अपभ्रंश भाषा की रचनाओं का समावेश आदिकाल की साहित्यिक राशि में करते थे। इसलिए सातवीं, आठवीं शताब्दी विक्रमी में लिखी गई प्राकृत और अपभ्रंश भाषा की रचनाएं इस काल के साहित्य के परिवेश में आ जाती हैं। अतः इस काल की साहित्यिक सामग्री को निम्नलिखित वर्गों में बांटा जा सकता है।

1) जैन साहित्य
2) बौद्ध–सिद्धों और नाथपंथियों का साहित्य
3) चारण कवियों के प्रबंध एवं मुक्तक काव्य
4) फुटकल साहित्य

इन वर्गों में आने वाली रचनाओं का परिचय यहां संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैन साहित्य :

जैन मत के साधुओं ने जैन सिद्धांतों से सम्बन्धित काव्य लिखा परंतु कई कवि ऐसे भी हुए जिन्होंने उच्चकोटि के प्रबंध काव्य लिखे। इनमें स्वयंभ् कवि का लिखा 'परम चरित्र' काव्य प्रसिद्ध है। इसमें श्री राम की कथा का वर्णन सन्धियों अर्थात् सर्गों में किया गया है। चौपाई और दोहों में सारा ग्रंथ लिखा गया है। पुष्पदंत कवि ने 'जसहर चरिउ' (यशोदरा चरित्र) तथा 'णाय कुमार चरिउ' (नागकुमार चरित्र) नामक दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे। जिनमें कवि पुष्पदंत की अनूठी और उत्तर पुराण नामक दो खंड हैं। आदि पुराण खंड में 24 जैन तीर्थकरों का वर्णन किया गया है। प्रसिद्ध जैनाचार्य मेरूतुंग का 'प्रबंध चिन्तामणि' ग्रंथ भी मिलता है। जिसमें राजा मुंज के विपति के दिनों की घटनाओं का वर्णन किया गया। शालिभद्र सूरि नामक कवि हिन्दी रासो परम्परा का भी जनक माना जाता है। इसकी रचना 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसे हिन्दी जैन रास का भी ग्रंथ कहा जाता है। उसी प्रकार जैन साहित्य में मुमतिमणि के नेमिनाथ रास का कल्हण कविकृत 'जम्बू रास' आदि ग्रंथ भी मिलते हैं।

बौद्ध-सिद्धों का साहित्य :

आदिकाल के कण्हपा, सरहपा, गोरक्षण आदि चौरासी सिद्धों का नाम मिलता है। जिनमें अनेक लेखक थे। ये सिद्ध वास्तव में बौद्ध धर्म, के महायन सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। इनमें ही वज्रयाली तांत्रिक भी मिल गए थे। सिद्धों के प्रभाव निम्नवर्ग की जनता पर बहुत पड़ा और ये जादू टोनों और तंत्र–मंत्र का सहारा लेकर अपना कार्य करते थे। इनकी रचनाओं में रहस्यवाद का निरूपण था। अनुभूतियों का रहस्यपूर्ण प्रकाशन है। परम तत्व की देह के भीतर पाने पर बल दिया गया है, वामाचार के सिद्धियों के लिए आवश्यक माना गया है। सिद्धों की इन रचनाओं में तंत्र–मंत्र का वर्णन भी किया गया है। इस साहित्य की भाषा 'सधा' कही जाती है।

नाथपंथियों का साहित्य :

नवमीं और दसवीं शताब्दी में शैव और बौद्ध साधना के मेल से नाथपंथी योगियों का एक नया सम्प्रदाय सामने आया। मूलतः ये शैव ही थे। ये नाथपंथी आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ, गौरखनाथ, गैगीनाथ, निवृतिनाथ आदि के नाम से जाने जाते हैं। सिद्धों की संख्या चौरासी थी तो नाथों की नौ मानी जाती है। चौरासी सिद्ध तो शूद्र मछुए, चमार, धोबी, डोम, कहार आदि जातियों के स्त्री पुरूष थे। परंतु नाथ से उच्च जाति के लोग थे। इनकी साहित्य भाषा नागर अपभ्रंश तथा ब्रज भाषा थी इनकी देशभाषा में लिखी हुई कृतियां भी मिलती हैं। डॉ. पीतम्बदत्त बड़थ्वाल ने नामपंथी 40 पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की थी जिनमें से 13 प्रकाशित हैं। इनमें 'सबदी,' 'गौरख गणेश–गोष्ठी', 'महादेव गौरख संवाद', गोरखबोध आदि प्रसिद्ध हैं। 'विराटपुराण' नामक ग्रंथ नामपंथियों ने संस्कृत के विराट पुराण का अनुवाद करके प्रस्तुत किया हुआ है। इस मत के साहित्य में योग का वर्णन प्रधान है। इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों की साधना का निरूपण किया गया है।

चारण कवियों के प्रबन्ध एवं मुक्तक काव्य :

चारण कवियों में डिंगल भाषा में रचनाएं लिखी हैं उन्हें वीरगाथा काव्य कहा जाता है, इसका नाम रासो काव्य भी कहा गया है। 'रासो' शब्द राउस रसायन, राजसूय एवं रास आदि माना जाता है। इन कवियों की रचनाओं में दलपति विजय का खुमान रासो, नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो, चन्दरबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो', भट्ट केदार के 'जयचंद प्रकाश' एवं 'जलमंयक जसचन्द्रिका' जगनिक के आल्हाऊदल (आल्हा खंड) तथा श्रीधर कवि के 'रणमल्ल' छंद नामक रचना का उल्लेख विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इन सभी ग्रन्थों में राजस्थान और कन्नौज के वीरता भरे अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन मिलते हैं। इनमें तत्कालीन भारत के राजा रावल खुमान,

बीसलदेव, पृथ्वीराज, जयचंद राजा सूर्यमल्ल ने 'वंश भास्कर' ग्रंथ लिखा जिसमें बूंदी के राजाओं का इतिहास है। इनकी लिखी एक वीर 'सतसई' का भी उल्लेख मिलता है।

फुटकर साहित्य :

इस समय अलग–अलग विषयों पर साहित्य लिखने वाले भी अनेक कवि थे। आचार्य हेमचंद ने व्याकरण विषय पर सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुसार ग्रंथ लिखा। इनका लिखा 'द्वातय काव्य' भी प्रसिद्ध है। इसमें 'कुमारपाल चरित्र' नामक एक 'प्राकृत काव्य' भी शामिल है। सोमप्रभु सुरी ने कुमारपाल प्रतिबोध नामक ग्रंथ संस्कृत गद्य भाषा में लिखा। शांडग धर पद्धति नाम से एक सुरभाषित संग्रह बनाया था। अमीर खुसरो ने डेठ बोलचाल की भाषा में पहेलियों, मुकरियों और दोसुखने की रचना की है। इसी काल में विद्यापति की 'कीर्तिकला' 'कीर्तिपताका' और 'विद्यापति पदावली' नामक ग्रंथों की रचना हुई। इस काल में अब्दुलरहमान ने सन्देशासक काव्य ग्रंथ लिखा। इसमें विरह पीड़ित एक स्त्री द्वारा अपने प्रिय को भेजे गए सन्देश का वर्णन किया है। संदेश में जाने वाला एक पथिक है। जुलाहा जाति में जन्मे इस मुसलमान कवि ने मधुर एवं प्रवाहपूर्ण भाषा में इस ग्रंथ को लिखा है।

आदिकाल में कुछ गद्य साहित्य की भी रचनाएं उपलब्ध हैं : राउलबेल, अराधना, बालशिक्षा, अतिचार, नवकार व्याख्यानाम् धनपाल कथा, सम्यकाल, जिनदत तथा 'बाहुबली कथा' शोकाधिकार, कान्हण के प्रबंध, अचलदास खीचीरा वचनिका, वर्णरत्नाकर, पृथ्वीचंद चरित्र आदि कृतियां प्रसिद्ध हैं।

1.1.2.4 आदिकाल के साहित्य की विशेषताएं :

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आरम्भ सामान्यतः सं. 1050 वि. से माना जाता ह। सं. 1050 से 1375 वि. तक के समय को हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने आदिकाल, वीरगाथा काल, प्रारम्भिक काल, उन्मेष काल, बीजवपन काल, सिद्ध सामंत काल, अपभ्रंश काल, संधिकाल, संक्रमण काल तथा चारणकाल आदि अनेक नामों से अभिहित करना चाहा है। इनमें से दो नाम ही अधिक प्रचलित एवं मान्य रहे हैं–आदिकाल तथा वीरगाथा काल।

इस काल में अधिकतर रासो ग्रंथ रचे गए हैं। विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो आदि इस काल के ग्रंथ हैं। विद्यापति कृत 'कीर्तिपताका' और विद्यापति पदावली का भी इस काल के साहित्य में विशेषत महत्व है। प्रत्येक साहित्य काल की कुछ सामान्य प्रवृतियां तथा काव्यगत विशेषताएं होती हैं। इस काल की विशेषताओं को निम्न शीर्षकों में विवेचित किया जा सकता है।

1. वीर रस की प्रधानता :

इस काल के साहित्य में वीर रस की प्रधानता है। इसलिए इस काल को वीरगाथा काल माना गया। सभी रासो ग्रंथ वीर रसात्मक ग्रंथ है। वीर रस के प्राधान्य का कारण यह है कि उस समय युद्धों के बादल चारों ओर मंडरा रहे थे। देश छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित था। इन राज्यों के शासक एक दूसरे राजा की सुन्दर कन्या या रानी को छीनने के उद्देश्य से एक दूसरे पर आक्रमण करते रहते थे। पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो आदि सभी ग्रंथों में युद्धों का मूरत कारण रूपवती नारियां ही है। तत्कालीन समाज के बालकों, युवकों युवतियों, वृद्धों में भी एक अदम्य जोश एवं उत्साह था। उस समय के लोगों में व्याप्त वीरता का आदर्श निम्नांकित छंद से भली भांति स्पष्ट है :

बारह बरस ले कुकर जिए, और तेरह ले जिए सियार।
बरस अठारह क्षत्री जिए, आगे जीवन को धिक्कार।।

ऐसी परिस्थितियों में तत्कालीन काव्य में वीर रस का सर्वाधिक चित्रण स्वाभाविक ही है। इस काल में

वीरगाथात्मक अनेक रचनाएं प्राप्त हैं। राज्याश्रय में रहने वाले कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की विजय और युद्ध का चित्रण किया है। राजाओं की शूरता भरी घटनाओं का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन तब के काव्य का अन्यतम प्रवृति परिलक्षित होती है। वीर रस की प्रधानता युद्धों के सजीव वर्णन में दृष्टिगत होती है। युद्ध वर्णन अत्यंत सजीव एवं प्रभावी है। उसमें प्रयुक्त होने वाले अस्त्र–शस्त्रों का नाम भी वर्णित है।

2. शृंगार रस का प्रतिपादन :

इस काल में वीररस के साथ–साथ शृंगार रस का भी सुन्दर अंकन हुआ है। राजपूत राजा जहां अपने आत्मसम्मान एवं गौरव के रक्षार्थ अपने पराक्रम शौर्य एवं वीरता का परिचय देने से नहीं चूकते थे वहां सुन्दर राजकुमारियों से शादी करने के लिए कोई न कोई राजा लालायित रहता था। इस काल में रचित वीरकाव्य ग्रंथों में वर्णित युद्धों का मूल कारण कोई न कोई राजकुमारी ही होती थी। ऐसी परिस्थिति में तत्कालीन साहित्य में शृंगार रस का आना नितांत स्वाभाविक था। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन आदिकालीन साहित्य में उपलब्ध है। बीसलदेव रासो ने संयोग शृंगार में षड्–ऋतु वर्णन, रूप सौंदर्य, वयः संधि, नख–शिख आदि काव्य रूढ़ियों का सुन्दर योजना है। पृथ्वीराज रासो में पद्मावती की वयः संधि का चित्रण अत्यंत सुन्दर बन पड़ा है। रासो ग्रंथों में वीर और शृंगार रस को इकट्ठे देखकर ऐसा लगता है कि राजपूतों का 'ध्येय जीविते लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगना' ही था।

वीर रस का वर्णन भी आदिकालीन काव्यों में मिलता है। सुन्दर स्त्रियों के कारण युद्ध हो जाते थे। उनके विवाह और विरह का वर्णन कवियों ने अत्यंत मार्मिक शैली में किया है। राजकीय भोग विलास के चित्रण में संयोग–शृंगार का चित्र भी मार्मिक है। शृंगार रस का वर्णन इस काल के काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है।

3. कल्पना का बाहुल्य तथा ऐतिहासिकता का अभाव :

आदिकालीन साहित्य में चारणकाव्य में कल्पना का बाहुल्य है। इस विषय में कवियों की उड़ान काफी दूर तक होती है। कल्पना के द्वारा इन कवियों ने प्रत्येक वस्तु को रंगीन और अद्भुत बनाने का प्रयास किया है। साधारण से साधारण घटना को कल्पना के बल पर ही असाधारण और चमत्कारपूर्ण बना दिया गया है। अपने चरित्र नायकों में गुणों के प्रदर्शन के हेतु भी इन्होंने कल्पना का आश्रय ग्रहण किया है। आश्रयदाताओं की वीरता और युद्ध कौशल में इन कवियों की चाटुकारिता विशेष रही है। इसलिए ये तथ्य की कल्पना का आश्रय लेते हैं। इसके साथ ही आदिकाल में रचित प्रायः सभी वीरगाथात्मक ग्रंथों की प्रमाणिकता संदिग्ध है। अतः उनमें ऐतिहासिकता का अभाव है। इन काव्य ग्रंथों में इतिहास विख्यात चरित्रनायकों को लिया गया है। लेकिन उनका वर्णन इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। इन कवियों के द्वारा दिए गए संवतों और घटनाओं से भी इनका मेल नहीं बन पाता। इन कवियों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना की प्रधानता है। इतिहास के विषय को लेकर चलने वाले कवि में जो सावधानी होती है। वह इन काव्य निर्माताओं में नहीं। इन रचनाओं का साहित्यिक महत्व तो है पर ऐतिहासिकता संदिग्ध है।

4. आश्रयदाताओं की प्रशंसा :

आदिकाल के अधिकांश कवि राजाओं या सामंतों के आश्रय में रहते थे। उनको आश्रय तभी तक प्राप्त होते थे, जब तक राजा उनसे प्रसन्न रहे। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि कवि लोग अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए उनका यशोगान करते। रासो ग्रंथों में कवियों ने अपने आश्रयदाताओं को धर्मवीरता, युद्ध–कुशलता, ऐश्वर्य आदि का वर्णन बढ़–चढ़ाकर, ओजस्वी भाषा में किया है। इस काल के कवियों की दृष्टि अपने चरित नायक की श्रेष्ठता तथा उनके विरोधी राजा की दृष्टि और चारित्रिक दुर्बलताओं के वर्णन में रहती थी। हम आदिकालीन परिस्थितियों की चर्चा में स्पष्टतः जान चुके हैं कि ये कवि राजा के आश्रय

में रह रहे थे। जीविका और निश्चित साहित्य–साधना के लिए ऐसा करना आवश्यक था। ये आश्रित कवि राजा के मित्र हुए करते थे, इसलिए युद्ध क्षेत्र तक में साथ निभाते थे। घटनाओं को बदलने व कल्पना के समावेश के कारण इन रासो ग्रंथों की प्रमाणिकता संदिग्ध हो गई और विद्धानों को वास्तविक स्थिति जानने के लिए काफी परिश्रम करना पड़ा है फिर भी इस काल में रासो काव्यों का महत्व स्पष्ट है। इस काल का धार्मिक साहित्य जन–जीवन के साथ जुड़ा रहा।

5. प्रकृति चित्रण :

इस काल के काव्य ग्रंथों में प्रकृति का आलम्बन, और उद्दीपन के रूपों में चित्रण किया गया है। नदी, पर्वतों एवं क्षेत्रीय स्थलों के कई चित्र मनोहर है। रात, संध्या, चांदनी आदि का भी चित्रण किया गया है। वस्तुओं की गणना प्रकृति चित्रण के आधार पर की गई है। अधिकांशत उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण दृष्टिगत होता है।

6. सांस्कृतिक महत्व :

सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से आदिकालीन साहित्य के अध्ययन से तत्कालीन महान् सांस्कृतिक उथल–पुथल का परिचय होता है। इस साहित्य के आधार पर अब सांस्कृतिक अध्ययन भी होने लगे हैं। वास्तव में वीरगाथाकालीन साहित्य राजस्थान की मौलिक निधि है और सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए गौरव का विषय है। इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी इस साहित्य का महत्व है। सबसे बढ़कर इस काल के साहित्य का सांस्कृतिक महत्व है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में, 'उससे भारत की एक सुदीर्घ सांस्कृतिक आशा आकांक्षाओं, सफलताओं, दुर्बलताओं आकद के साथ खड़ा कर देता है।

7. राष्ट्रीयता का अभाव :

आदिकालीन काव्य में राष्ट्रीयता का अभाव है और यह सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। उस समय देश छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित था और राष्ट्रीय भावना का पूर्णतः अभाव था। राष्ट्र शब्द उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए नहीं बल्कि अपने–अपने प्रदेश एवं राज्य के लिए ही प्रयुक्त होता था। जब तत्कालीन राजाओं ने अपने सौ पचास गांवों को ही 'राष्ट्र' समझ रखा था तो फिर उनके आश्रित कवियों को उन्हीं के पद चिन्हों पर ही चलना था। वस्तुतः यह काल देशी–विदेशी आक्रमणों, छल–प्रपंच तथा धन–विलासितों से युक्त था।

8. भाषा और प्रबंध काव्य लेखन :

आदिकाल में हिन्दी भाषा और साहित्य का उदय हुआ था। आरम्भिक काल में किसी भाषा का विकास शैशव अवस्था में होता था, इसलिए उससे यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि उसमें प्रौढ़ साहित्य लिखा जा सकता है, किंतु आदिकाल के डिंगल, पिंगल, मैथिली और खड़ी बोली के साहित्य को देखकर ऐसा लगता कि ये शिशु भाषा की तुतलाहट है। डिंगल पर अवश्य अपभ्रंश भाषा की छाया है पर मैथिली में विद्यापति ने जो रस बरसाया है उसे चखकर भाषा की साहित्यिक प्रौढ़ता का आस्वादन होता है। ब्रजभाषा में खुसरो का साहित्य निराला है, किन्तु उसकी प्राचीनता संदिग्ध है। इन ग्रंथों में डिंगल और पिंगल मिश्रित राजस्थानी भाषा की आज के विद्वान डिंगल की संज्ञा देते हैं। जो वीरत्व के स्वर के लिए बहुत उपयुक्त है। चारण अपनी कविता को बहुत ऊंचे स्वर में पढ़ते थे और यह डिंगल भाषा उसके लिए उपयुक्त थी। उस समय की अपभ्रंश मिश्रित साहित्यिक ब्रजभाषा पिंगल के नाम से अभिहित की जाती थी।

पृथ्वीराज रासो जैसे विशाल महाकाव्य से लेकर परमाल रासो या आल्हाखंड जैसे खंडकाव्यों में साहित्यिक प्रौढ़ता के साथ शिल्पगत प्रौढ़ता के भी दर्शन होते हैं। उस काल की ऐतिहासिक परिस्थितियों के बीच जन्मे

इन प्रबंध काव्यों में कथापात्रों के लचक भरे जीवन को पूरी बारीकी के साथ प्रस्तुत किया गया है। इनमें युद्ध श्रेष्ठता के विविध दृश्य होने के कारण लोकप्रियता के तत्व विद्यमान है। भाषा एवं प्रबंध लेखन में इस काल के ग्रंथों का विशेष महत्व है।

9. अलंकार एवं छंद प्रयोग :

वीरकाव्यों में वीर रस की प्रधानता और वीरोचित वर्णन में अतिशयोक्ति की प्रधानता से अतिशयोक्ति अलंकार का बहुत प्रयोग किया गया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि सभी प्रकार के अलंकारों और छंदों के प्रयोग इनमें मिलते हैं। छंदों का जितना विविधमुखी प्रयोग इस काल के काव्यों में हुआ है उतना पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं हुआ। दोहा, तोटक, तोमर, गाथा, गाहा, राजा, कुंडलियां आदि छंदों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ हुआ। अतः कहा जा सकता है कि आदिकालीन साहित्य अलंकारों और छंदों के प्रयोग में विशिष्टता प्राप्त किए है।

1.1.2.5 आदिकाल के प्रमुख कवि :

अमीर खुसरो :

आदिकालीन कवियों में मुसलमान कवि अमीर खुसरो का नाम अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस कवि की प्रतिभा एवं सृजन क्षमता का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि इन्होंने हिन्दी के उस आरंभिक युग में भी भाषा का चलता हुआ और प्रवाहमय रूप आत्मसात् किया। इन्हें स्वयं को भारतीय कहलाने में गौरव का अनुभव होता था, तुर्क कहलाने में नहीं। अतः अरब और मिश्र को अपना प्रेरणा स्त्रोत माना। उन्हीं के शब्दों में –'मैं हिन्दुस्तान का तूती हूं। अगर तुम वास्तव में मुझसे कुछ जानना चाहते हो तो हिन्दी में पूछो, मैं तुम्हें अनुपम बातें बता सकूंगा।' उस युग में खुसरो के दिल और दिमाग पर भारतीयता की लहरें हिलोरे लेती रहती थी। ऐसे ही प्रतिभा सम्पन्न मुसलमान कवियों के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा था– 'इन मुसलमान हरजनन पै कोटिन हिन्दू वारिये'। लेकिन खुसरो केवल कवि नहीं अपितु बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार, कवि, इतिहासकार, संगीतज्ञ, पर्यटक, कूटनीतिज्ञ, योद्धा, क्रियाशील व्यक्ति एवं विद्वान भी थे। विगत 900 वर्षों में एक भी ऐसा व्यक्ति भारत में नहीं हुआ। फारस जैसे विद्वानों के देश में भी 1000 वर्ष में तीन या चार व्यक्ति हुए हैं, जो बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे। वास्तव में अमीर खुसरो की रचनाओं भाषा, ज्ञान, संगीत, मानवीय संवेदना, युद्ध और प्रेम का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

कवि का वास्तविक नाम अब्दुलहसन था और अमीर खुसरो इनका उपनाम था। इनका जन्म सं. 1372 में एंटा ज़िला के पटियाली नामक ग्राम में हुआ था। बचपन से ही ये निजामुद्दीन औलिया के शिष्य बन गए थे। अमीर खुसरो बलबन के दरबार में नौकर रखे गए थे। बाद में वे राजकीय बन गये। कवि ने अपने जीवनकाल में अनेक राजनैतिक उथल–पुथल देखी थी। गुलाम वंश के पतन से लेकर तुगलक वंश के आरम्भ तक उन्होंने 11 बादशाहों को दिल्ली के सिंहासन पर राज करते देखा।

अमीर खुसरो अत्यंत मिलनसार विनोदपूर्ण एवं सहृदय व्यक्ति थे। विनोदपूर्ण कविता के लिए खुसरो को हिन्दी का महत्वपूर्ण कवि माना जाता है। वे मनोरंजन और रसिकता के अवतार थे, वे बहुत बड़े दानी थे। जो लोग कुछ धन उन्हें मिलता था, गरीबों में बांट देते थे। उनमें साम्प्रदायिकता लेशमात्र भी नहीं थी। गुरु की मृत्यु के कुछ दिनों के पश्चात् ही खुसरो की मृत्यु हो गई और गुरु की कब्र के नीचे ही उनकी कब्र बना दी गई। इनकी मृत्यु सं. 1382 में हुई।

अमीर खुसरो फारसी, अरबी, तुर्की एवं हिन्दी के विद्वान् थे। इनके द्वारा विरचित 99 ग्रंथ बतलाए जाते हैं। लेकिन इनके 20 ग्रंथ ही उपलब्ध हैं, जिनमें से खालिक बारी और किस्सा चार दरवेश विख्यात हैं। हिन्दी

पर भी इनका पर्याप्त अधिकार था। इनकी पहेलियां, कह मुकरियां और दो सखुने अत्याधिक प्रसिद्ध हैं – पहेलियां :

मिला रहे तो नर है, अलग होय तो नगर।
सोने का सा रंग है, कोई विरला करे विचार।। (चना और उसकी दाल)

1. मांस क्यों न खाया?
डोम क्यों न गाया? (गला न था)

2. सितार क्यों न बजा?
औरत क्यों न नहाई? (पर्दा न था)

मुकेरियां :

1. यह आवे तो शादी होवे, मीठे लागे वाके बोल।
क्यों सखी साजन? न सखि साजन न सखी ढोल।

2. मेरा मोसे सिंगार करावत, आगे बैठे के मान बढ़ावत।
कासे चिक्कन न कोई दीसा, ए सखी साजन? ना सखि सीसा।।

अमीर खुसरो गवैये थे। अतः ध्रुवपद के स्थान पर इन्होंने कव्वाली बनाई और कई राग निकाले। वीणा से सितार बनाने का कार्य भी इन्होंने किया था। संगीतज्ञ होने के कारण ये बहुत प्रसिद्ध थे। इन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रयास किया। इनके साहित्य में तत्कालीन युग के सुलतानों का इतिहास मिलता है। इन्होंने आनन्द और विनोद के वातावरण में रहने का संदेश भी दिया है। खुसरो को जन–कवि की संज्ञा दी जा सकती है। खुसरो ने मर्मस्पर्शी उक्तियां कहीं हैं। उन्होंने जनसाधारण की बोली को अपनाया है। खुसरो की रचनाओं का चलता हुआ और सुथरा प्रयोग मिलता है। खड़ी बोली हिन्दी का आरम्भ इन्हीं से माना जाता है। सभी ने खुसरो की हिन्दी कविता की प्रशंसा की है। अमीर खुसरो के काव्य की सरलता और सहजता का ज्ञान इनकी रचनाओं से स्पष्ट हो जाता है। अमीर खुसरो काव्यकार के साथ सच्चे संत भी थे। इन पर सूफी कवियों का प्रभाव भी था।

विद्यापति :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में विद्यापति को मैथिली कोकिल एवं अभिनव जयदेव के नामों से स्मरण किया जाता है। आदिकाल की पर्याप्त सामग्री अभी भी संदिग्ध है। पर विद्यापति सबसे अधिक विवादास्पद कवि है। इस कवि को आदिकाल में सम्मिलित किया जाए या भक्तिकाल में अथवा इसकी चर्चा पृथक से मैथिल कवियों में की जाए? अधिकांश इतिहासकारों ने आदिकाल की सीमावधि 1400 तक स्वीकार की है। जबकि विद्यापति का समय इसके बाद का है। इन्हें अनेक कारणों से भक्तिकाल में भी सम्मिलित नहीं किया जा सकता। इसके मूल में इस कवि का भक्त ही अपेक्षा श्रृंगारी होना है। इस कारण यह कवि आदिकाल तथा भक्तिकाल से सर्वथा अलग प्रतीत होता है। इसकी श्रृंगारिकता का सम्यक् विकास रीतिकाल में हुआ। यही स्थिति इस कवि की भाषा और काव्यरूपों की है। इन्होंने संस्कृत, अपभ्रंश तथा मैथिली तीनों भाषाओं में साहित्य रचा है। कीर्तिलता तथा कीर्तिपताका इस कवि की चरित काव्य परम्परा में विशिष्ट रचनाएं हैं। इनकी पदावली का अपना महत्व है। अन्य अनेक कारण प्रस्तुत कर विद्वान इनके समय की अधिक चिंता न करते हुए इन्हें आदिकालीन कवि मानते हैं।

जन्मस्थान के विषय में विद्वानों ने उन्हें बंगाली और कुछ ने उन्हें मैथिली निवासी भी कहा है। आज से प्रायः

50 वर्ष पूर्व बंगाली लोग विद्यापति को बंगाल का कवि मानते थे, परंतु जब उनके जीवन की घटनाओं की जांच बाबू रामकृष्ण मुकर्जी और डॉ. ग्रियर्सन ने की, तब से बंगाली अपने को अव्यवस्थित पाते हैं। विद्यापति के जीवन संबंधी बहुत कम तथ्य प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है। अन्य अधिकांश महान कवियों की भांति इनके जन्म और मृत्यु का समय निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान इनका जन्म सन् 1360 ई. भी स्वीकार करते हैं। इनकी मृत्यु सन् 1448-49 में मानी जाती हैं।

विद्यापति का वंश पंडितों एवं विद्वानों का था। वंश परम्परा मे विख्यात संत जयदेव हुए हैं। जयदेव के पुत्र गणपति ठाकुर थे, जो अपने समय में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान थे और मिथिला नरेश के सभापंडित थे। उन्होंने भक्ति–तरंगिनी की रचना की थी। इस भांति विद्यापति का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ, जो अपनी विद्वता एवं बुद्धिमता के लिए प्रसिद्ध था और जिसके ऊपर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों ही कृपालु थी।

मिथिला के महाराज शिव सिंह विद्यापति के आश्रयदाता थे। कविद्यापति ने अपनी प्रतिभा और विद्वता द्वारा दिल्ली के सम्राट को प्रसन्न करके शिव सिंह महाराज को मुक्त करवाया था। महाराज ने इनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए इनका यथोचित सम्मान किया। विद्यापति हिन्दी के ऐसे कवि हैं, जिन्हें संभवतः सर्वाधिक उपाधियां प्राप्त हुई थी। अभिनव जयदेव, दशावधान, कविशेखर, कविकंठहार, कविरंजन, राज पंडित, लेखन कवि, सरस कवि, कवि रत्न, नव कवि, मैथिल कोकिल, प्रभृति उनकी उपाधियां लोक विश्रुत हैं।

विद्यापति संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मैथिली भाषाओं के प्रकांड विद्वान थे। इन भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। शैव सर्वस्त सार, भूपरिक्रमा, पुरुष परीक्षा, विभासागर आदि इनके संस्कृत में रचित ग्रंथ हैं। कीर्तिलता और कीर्तिपताका अवहट्ट में रची हुई है, परन्तु इन्होंने यह अनुभव किया कि लोकभाषा में की हुई रचना जनमानस के अधिक निकट पहुंच सकती हैं। अतएव उन्होंने लोकभाषा की कृति का आधार उनकी लोकभाषा की कृति पदावली है। इनकी लोकभाषा की कृतियां..... कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली इतनी लोकप्रिय हुई हैं कि बंगला, मैथिली और हिन्दी के विद्वान इन्हें अपनी भाषा की कृतियां मानने लगे हैं।

विद्यापति के ग्रंथो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी थे। वे अनेक विषयों के ज्ञाता थे। भूगोल, इतिहास, नीति, व्यवहारिक ज्ञान, अर्थशास्त्र आदि की इन्हें गहन जानकारी थी। विद्यापति के काव्य में वीरता, भक्ति, श्रृंगार और नीति की प्रवृतियां एक साथ दृष्टिगत होती हैं। पदावली में इन्होंने गीत गोबिन्द की परम्परा को अपनाया है। राधा और कृष्ण की नायिका के रूप में चित्रित किया गया है। कुछ पद भक्ति सम्बन्धी भी हैं। भक्ति के पदों में शिव और दुर्गा की स्तुति की गई है। कुछ छंदों में समाज की परिस्थिति की ओर संकेत किए गए हैं।

'पदावली' के अतिरिक्त कीर्तिलता का भी विशेष महत्व है। इसमें कवि ने अपने चरित नायक कीर्ति सिंह की वीरता आदि की प्रशंसा करते हुए कहीं भी ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना नहीं की है। इसमें कहीं–कहीं गद्य भी प्रयुक्त हुआ है। इसीलिए कुछ विद्वान इस रचना को चम्पू स्वीकार करते हैं। इस रचना की भाषा के विषय में डॉ. रामअवध द्विवेदी लिखते हैं –

''कीर्तिलता की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है। किंतु उसमें कुछ–कुछ मैथिली का मिश्रण है। गद्य और पद्य दोनों ही काम में लाए गए हैं। अतः यह रचना केवल कविता में लिखे हुए अपभ्रंश चरित काव्यों से कुछ भिन्न है। समसामयिक इतिहास के अध्ययन के लिए कीर्तिमाला में विश्वसनीय सामग्री मिलती है।'' इसे आदिकाल की प्रामाणिक रचना माना जाता है।

कीर्तिपताका की रचना भी अपभ्रंश में हुई है और उसमें चरित काव्यों की प्राचीन परिपाटी का अपेक्षाकृत अधिक निर्वाह हुआ है। कीर्तिपताका में राजा शिव सिंह एवं कुछ मुस्लिम आक्रमणकारियों के युद्ध का वर्णन ओजस्वी शैली में हुआ है। डॉ. ग्रियर्सन आदि विद्वान विद्यापति को भक्त कवि मानते हैं। परन्तु वास्तव में वे

भक्त न होकर श्रृंगारी कवि ही है। पदावली के अध्ययन से पता चलता है कि बहुत थोड़े पद भक्तिपरक है। एक बहुत बड़ी संख्या–श्रृंगार प्रधान काव्य की ही है। श्रृंगार में कवि ने संयोग और वियोग दोनों का ही चित्रण किया है। लोकगीतों की सी सरलता, स्वाभाविकता, स्वच्छंदता इनके गीतों में स्पष्ट है।

1.1.3 सारांश

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में भारत की राजनीतिक स्थिति शोचनीय थी। पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष के कारण लोग व्यापक राष्ट्रीयता की भावना को प्रायः भूल चुके थे और एकता की भावना का लोप हो गया था। धार्मिक दृष्टि से इस समय बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था और बौद्ध धर्म उत्तरोतर बलशाली बन रहा था। इस्लाम धर्म भी प्रचलित होता जा रहा था। दूसरी ओर जैन धर्म और बौद्ध धर्म के इसी परवर्ती रूप से सिद्ध और नाथ कवियों की परम्परा उभर कर सामने आई।

वीरगाथा काल हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक काल है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को वीरगाथा काल का नाम दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे आदिकाल कहना उपयुक्त समझा। राहुल सांकृत्यायन इसे 'सिद्ध सामन्त युग' मानते हैं और डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे चारण काल का नाम दिया। कुछ अन्य विद्वान इस काल को रासो काल, उदय काल या जागरण काल के नामों से सम्बोधित करते हैं, परंतु 'वीरगाथा काल' या 'आदिकाल' ये नाम ही अधिकांश विद्वानों को मान्य हैं।

वीरगाथात्मक काव्य की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं। आश्रयदाता राजाओं के वैभव और वीरता की प्रशंसा, उनके युद्ध विवाह आदि का विस्तृत वर्णन किया है। परन्तु राष्ट्रीयता की भावना का अभाव रहा। युद्ध का सजीव और हृदयग्राही चित्रण किया गया। कर्कश और ओजपूर्ण पदावली, शास्त्रों की झंकार की याद दिलाती है। पारस्परिक वैमनस्य का कारण स्त्रियां थीं। अतः उनके विवाह एवं रोमांस की कल्पना तथा विलास प्रदर्शन में श्रृंगार का श्रेष्ठ प्रदर्शन किया गया है। चरित्र नायकों की वीर गाथाओं का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने के ऐतिहासिकता कम और कल्पना का आधिक्य है।

आदिकाल के अंतर्गत स्पष्ट रूप से दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध होता है।

(1) डिंगल भाषा में लिखित वीरगाथात्मक साहित्य -

इन ग्रंथों में कवियों ने अपने आश्रयदाता के चरित्र, वैभव, वीरता की प्रशंसा बढ़ा–चढ़ा कर की है। इसमें इतिहास और कल्पना का मिश्रण मिलता है। इसे लोक भाषा काव्य या भाषा काव्य कहा जाता है।

(2) अपभ्रंश भाषा में लिखित साहित्य -

इन ग्रंथों में भक्ति श्रृंगार, नीति संबंधी रचनाएं हैं। इसमें प्रमाणिकता की दृष्टि से डिंगल में वीरगाथात्मक रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि आदिकालीन साहित्य भले ही प्रामाणिकता की दृष्टि से संदिग्ध है पर साहित्यिक कथ्य प्रस्तुति रचना शिल्प की दृष्टि से यह हिन्दी की आमूल्य निधि है।

आदिकालीन कवियों में मुसलमान कवि अमीर खुसरो का नाम उल्लेखनीय है। यह एक महान् कवि थे, जिन्होंने मुसलमानों को हिन्दी कविता करने के लिए प्रेरित एवम् आकर्षित किया। हास्य और विनोदपूर्ण कविता के लिए खुसरो को हिन्दी का महत्वपूर्ण कवि माना जाता है।

आदिकाल के दूसरे मुख्य कवि विद्यापति हुए हैं जो कि संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा मैथिली भाषाओं के प्रकांड विद्वान थे। विद्यापति हिन्दी के ऐसे कवि थे जिन्हें सर्वाधिक उपाधियां प्राप्त हुई थी। डॉ. ग्रियर्सन आदि विद्वान उन्हें भक्तकवि मानते हैं। परन्तु वास्तव में वे भक्त न होकर श्रृंगारी कवि ही है। श्रृंगार में कवि ने संयोग और वियोग दोनों का चित्रण किया है।

1.1.4 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
सात्विकता	सत्वगुणयुक्त
परिष्कृत	शुद्ध किया हुआ
मार्मिक	प्रभाव डालने वाला
प्रतीक	अवयव, अंक चिन्ह
प्रतिभा	दीप्ति, चमक
क्षमता	काम करने की सामर्थ्य
प्रामाणिकता	सबूत
विख्यात	प्रसिद्ध

1.1.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. वीरगाथा काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
2. वीरगाथा काल की प्रमुख प्रवृतियों का वर्णन कीजिए।
3. वीरगाथाकाल को अन्य किन नामों से सम्बोधित किया जाता है?
4. अमीर खुसरो तथा विद्यापति के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालें।

पाठ संख्या : 1.2 **लेखिका : डॉ. एस.के. खुमार**

चन्दबरदाई और उनके पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता/अप्रामाणिकता

इकाई की रूपरेखा

1.2.0 उद्देश्य
1.2.1 प्रस्तावना
1.2.2 चन्दरबरदाई का परिचय
1.2.3 पृथ्वीराज रासो
1.2.3.1 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता
1.2.3.2 पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता
1.2.3.3 पृथ्वीराज रासो की अर्द्धप्रामाणिकता
1.2.4 सारांश
1.2.5 सहायक पुस्तकें
1.2.6 शब्दावली
1.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न।

1.2.0 उद्देश्य :

आदिकालीन साहित्य में प्रचुर मात्रा में रासो–साहित्य की रचना हुई थी। गार्सी–द–तासी ने 'रासो' शब्द को राजसूय से माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'रासो' शब्द की उत्पत्ति 'रासायण' से मानते हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रास का मूल रास चारासक माना है। राजस्थान की बोलचाल की भाषा में 'रास' शब्द का प्रयोग लड़ाई के अर्थ में हुआ है। प्राचीन राजस्थान में रासक का अपभ्रंश 'राउस' मिलता है यही 'रासो' बना। 'रास' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग श्रीमदभागवत् गीत में गीत–नृत्य के रूप में हुआ है। अपभ्रंश साहित्य में विविध भावों, रसों और विषयों को लेकर रास या रासक काव्य लिखे गए। हिन्दी में मुख्यतः वीर रसात्मक प्रबन्ध काव्य के लिए रासो शब्द का प्रयोग हुआ है। रासो काव्यधारा हिन्दी साहित्य की समृद्ध काव्य–धारा है। इस की प्रमुख विशेषता है नृत्संगीतपरकता जिसमें जैनाचार्यों तथा धर्मोपदेश की रचनाएं मिलती हैं। दूसरी विशेषता छन्दों की विविधता है। इस परम्परा की रचनाएं जनजीवन एवं जनता की बोलचाल की भाषा की प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार आदिकालीन रासो–साहित्य राज्याश्रित कवियों का काव्य है और लौकिक धरातल पर रचित है। प्रायः सभी ग्रन्थों में प्रक्षिप्रांश है, जिनके कारण इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध हैं। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप –

* चन्दबरदायी की जीवनी से परीचित हो सकेंगे।
* पृथ्वीराज–रासो के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
* पृथ्वीराज–रासो प्रामाणिक रचना हैं, उसका तर्क सहित विश्लेषण कर सकेंगे।

* पृथ्वीराज रासो अप्रामाणिक रचना है, उसके विषय में विद्वानों के तर्कों का उल्लेख कर सकेंगे।
* पृथ्वीराज रासो अर्द्धप्रामाणिक है, इस विषय में विद्वानों के विचारों से अवगत हो सकेंगे।

1.2.1 प्रस्तावना :

आदिकालीन साहित्य का अध्ययन करते समय यह देखा गया है कि इस साहित्य के रचयिता कवियों ने अधिकांशतः वीर गाथात्मक साहित्य की रचना की है। रासो–साहित्य में चन्दबरदायी द्वारा रचित 'पृथ्वीराज रासो' को हिन्दी का प्रथम महाकाव्य स्वीकार किया गया है इसके सबसे अधिक रूपान्तर उपलब्ध होते हैं प्रचलन की दृष्टि से 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित बृहद् रूपान्तर उल्लेखनीय है, जिसमें 69 सर्ग 16,306 छन्द और 2500 पृष्ठ हैं। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता को लेकर सर्वाधिक ऊहापोह हुई है। डॉ. श्यामसुन्दर दास इसे महाकाव्य न मानकर एक विशालकाय ग्रन्थ कहते हैं। इसके अन्य रूपान्तरों में माध्य रूपान्तर बीकानेर तथा अबोहर में जैन ज्ञान भण्डार तथा साहित्य सदन में सुरक्षित हैं। लघुरूपान्तर यह अनूप पुस्तकालय बीकानेर में सुरक्षित है। चौथा रूपान्तर सबसे छोटा है, इसे अग्रचन्द नाहरा ने खोजा है। साहित्य की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' में वीर तथा शृंगार रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। वस्तु–वर्णनों का आधिक्य है और वे प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। इसकी भाषा युद्धों के प्रसंगों में डिंगल तथा प्रेम–विवाहादि प्रसंगों में पिंगल रूप धारण करती हैं। कहीं कहीं अपभ्रंश प्रभावित भी है। भाषा ध्वन्यात्मक एवं व्यंजनापूर्ण है। छन्दों में वैविध्य है। कोई 68 छन्दों का प्रयोग हुआ है। अलंकारों का प्रयोग सहज और स्वाभाविक है।

चन्दबरदायी हिन्दी के साहित्येतिहास के आदिकाल के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वे भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के सखा, अमात्य एवं राजकवि थे। कवि ने पृथ्वीराज चौहान के जीवन तथा वीर कृतियों का बड़ा सजीव एवं यर्थाथ चित्रण पृथ्वीराज रासो में किया है। चन्दबरदायी साहसी होने साथ–साथ काव्य, साहित्य, छन्द शास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, संगीत आदि विद्याओं में भी प्रवीण थे। कवि चन्द ने रासो ग्रन्थ की रचना संवादात्मक शैली में की है। चन्द की पत्नी गौरी प्रश्न करती है और कवि उसका उत्तर देते हैं। परन्तु पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता संदिग्ध है। साधारण पाठक यह निर्णय नहीं कर पाता है कि वह इसे प्रामाणिक कहे या अप्रामाणिक?

1.2.2 चन्दबरदायी का परिचय :

हिन्दी का सर्वाधिक विलक्षण कवि, जिसका अस्तित्व ही संदिग्ध हैं–महाकवि चन्दबरदायी हैं। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों में परस्पर गहरा मतभेद मिलता है। कुछ उसे प्रामाणिक मानते हैं, कुछ अर्द्धप्रामाणिक और कुछ सर्वथा अप्रामाणिक। ऐसी स्थिति में उसके रचयिता का अस्तित्व भी धूमिल हो जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। चन्दबरदायी हिन्दी के साहित्येतिहास के आदिकाल के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ कवि है। परम्परा के अनुसार वे हिन्दू–कुल के अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के सखा, मन्त्री, सेनापति एवं राजकवि थे। उनके सम्बन्ध में इतिहास मौन है, किन्तु उनके ग्रन्थ में आये हुए विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि उनका जन्म पृथ्वीराज के साथ ही सं. 1151 में लाहौर में हुआ। शुक्ल जी ने इनका जन्म वर्ष सन् 1168 ई. माना है तथा लिखा है कि–''रासो के अनुसार से भट्ट जाति के जगत नामक गोत्र के थे। इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनका और पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था।'' जैसा कि कवि ने लिखा है : 'इक दीह उपज, कि दीह समायकम्।'

रासो के अनुसार चन्द के पिता का नाम बैण रावबेनू था। चौहान वंश के साथ उनका परम्परागत सम्बन्ध था। कहा जाता था कि अजमेर के चौहान इनके पूर्वजों के यजमान थे। इसी परम्परागत सम्बन्ध के फलस्वरूप कवि चन्द और सम्राट पृथ्वीराज चौहान में बचपन में ही घनिष्टता हो गई थी और बड़े होने पर वह सम्राट

के राजकवि और गण्यमान सामन्त बन गए थे। कवि चन्द ने तत्कालीन युग के अनुकूल क्षत्रिय–विद्या भी प्राप्त की थी। तलवार चलाने, शब्द भेद बाण मारने और घुड़सवारी करने में बड़े निपुण थे। इस भांति वे समर भूमि में अपनी युद्ध क्षमता का भी पूर्ण परिचय दिया करते थे। सम्भवतः इसी कारण इनके ग्रन्थ में युद्धों का बड़ा सजीव, यथार्थ, रोचक एवं मार्मिक चित्रण हुआ है।

युद्ध–वीर और साहसी होने के अतिरिक्त कवि काव्य, साहित्य, छन्दशास्त्र, वैधक ज्योतिष, व्याकरण, पुराण, संगीत आदि विधाओं में भी प्रवीण थे। डॉ. परमानन्द के शब्दो में, ''कवि चन्द युद्ध वीरों के अग्रणी थे, कवियों के सिरमौर थे और विद्वानों के भूषण थे।''

कवि चन्द के दो विवाह हुए थे। पहली पत्नी का नाम कमला और दूसरी पत्नी का नाम गौरी था। इन दोनों पत्नियों से कवि चन्द्र की ग्यारह संताने उत्पन्न हुई थीं, दस पुत्र तथा एक पुत्री। दसों पुत्रों में से चौथा पुत्र 'जलहण' सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न विद्वान और सुयोग्य था। कवि ने स्वंय लिखा है :

''दहति पुत्र कवि चन्द के सुन्दर रूप सुजान।
इक जल्ह गुण बावरों गृत समुन्द्र रसमात्र।।

कवि चन्दबरदायी ने अपने सखा एवं आश्रयदाता पृथ्वीराज चौहान के जीवन तथा युद्धों का वर्णन अपने विशालकाय ग्रंथ 'पृथ्वीराज रासो' में किया है। यह एक वीर रसात्मक उच्चकोटि का महाकाव्य है। छप्पय, कवित्त, सवैया, तोमर, दोहा, सोरठा आदि सभी छन्दों का प्रयोग इसमें किया गया है। 'रासो' संवादात्मक शैली में है। कवि चन्द ने अपनी पत्नी गौरी से कथा कही है। गौरी प्रश्न करती है और कवि चन्द उसका समाधान करते हैं। इसमें यज्ञ–कुण्ड से चार क्षत्रिय–कुलों की उत्पति तथा चौहानों की अजमेर राज्य–स्थापना से लेकर पृथ्वीराज के पकड़े जाने तक का विस्तृत वर्णन है।

कवि चन्द सभा युद्ध, आखेट तथा यात्रादि में सदैव महाराज पृथ्वीराज के साथ रहा करते थे। जब शहाबुद्दीन गौरी पृथ्वीराज चौहान को बन्दी बना कर गजनी ले गया तब भी वहां पहुंचे और रासो के अन्तिम भाग को पूर्ण करने का कार्य इन्होंने अपने चौथे पुत्र को सौंप दिया था :– 'पुस्तक जल्हण हत्थ दें चली गज्जन नृप काजि।' गजनी पहुंच कर चन्द ने महाराज को मुक्त करवाने के लिए पृथ्वीराज द्वारा शब्द बेधी बाण चलाने की योजना बनाई। चन्द के संकेत से पृथ्वीराज ने बाण चलाकर गौरी का काम तमाम कर दिया। इसके पश्चात् चन्द और पृथ्वीराज ने एक दूसरे को कटार मार कर आत्मोत्सर्ग किया। संक्षेप में चन्द के जीवन–चरित की यही रूपरेखा है जो रासो के आधार पर तैयार की जा सकती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें अनेक असंगतियां है, अतः इसे चन्द का वास्तविक परिचय नहीं कहा जा सकता।

1.2.3 पृथ्वीराज रासो :

रासो काव्यों में सबसे महत्वपूर्ण तथा विवादास्पद ग्रन्थ चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो है। 'पृथ्वीराज रासो' लगभग ढाई हजार पृष्ठों का बृहत ग्रन्थ है। जिसमें अर्था, छप्पय, दूहा, त्रोटक, तोमर आदि अनेक प्राचीन छन्दों का उपयोग किया गया है। इस ग्रन्थ में कवि चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज चौहान को एक पराक्रमी तथा शौर्यशाली बादशाह के रूप में प्रस्तुत किया है। जिसने पूरी वीरता के साथ विदेशी आक्रमणकारियों के साथ युद्ध किया तथा उनकी अधीनता को कभी स्वीकार नहीं किया। अपनी मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज एक जातिय पुरुष के रूप में मान्य हो गया। तथा इसके विषय में लिखा गया यह ग्रन्थ चारण भाटों की सम्पत्ति बन गया। वे इसका प्रयोग जीविका कमाने के लिए करने लगे। ये लोग अपनी कल्पना के अनुसार इस ग्रन्थ में नए–नए प्रसंग जोड़ते चले गए। जिससे मूल कथानक में परिवर्तन होता चला गया।

वस्तु–वर्णन, चरित्र–चित्रण, भाव–व्यंजना एवं शैली की दृष्टि से भी पृथ्वीराज रासो एक उच्चकोटि की रचना है। कवि ने प्रसंगानुसार विभिन्न विषयों–प्रकृति, नगर, बाजार, राज–सभा, रंगमहल इत्यादि का विस्तार से वर्णन किया है। पृथ्वीराज जो जहाँ एक पराक्रमी, उत्साही, एवं दृढ़ योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है।

वहाँ चन्दबरदायी को एक ऐसे साहसी तथा गम्भीर वक्ता के रूप में प्रस्तुत किया है जिसकी वाणी विषम परिस्थितियों में भी सत्य को कहने से नहीं चूकती। पृथ्वीराज के राजपूती गौरव एवं आदर्श की झलक उस समय देखी जा सकती है जब पृथ्वीराज कन्नौज में संयोगिता का पाणिग्रहण कर लेता है तब उसके साथी उसे सलाह देते हैं कि वह संयोगिता को लेकर दिल्ली प्रस्थान करे तब तक वे लोग जयचंद की विशाल सेना का मुकाबला करते हुए उसे आगे जाने से रोकेंगे। लेकिन पृथ्वीराज इस बात को स्वीकार नहीं करता। वह इस बात को मानने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं होता कि वह चुपचाप दिल्ली चला जाए और उसके साथी उसके लिए लड़ते जाएं।

यद्यपि इस काव्य का नायक पृथ्वीराज है। किन्तु व्यक्तित्व की गम्भीरता एवं चारित्रिक गरिमा की दृष्टि से उसकी अपेक्षा चंद अधिक प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। वे सम्राट पृथ्वीराज के अधीन हैं लेकिन ऐसा तो केवल औपचारिक रूप में ही है। सामान्यतः तो वे एक ऐसे फक्कड़, ओजस्वी, स्पष्टवक्ता तथा गम्भीर कवि के रूप में दिखाई देते हैं, जिनका हृदय तथा मस्तिष्क किसी परतन्त्रता को स्वीकार नहीं करता।

पृथ्वीराज रासो एक प्रशस्ति काव्य है। कवि चन्दबरदाई ने अपने आश्रयदाता को ईश्वर के तुल्य मानकर उसकी आराधना की है। इस ग्रंथ में कवि ने आध्यात्म, राजनीति, धर्म, योगशास्त्र, युद्ध, सेना, विवाह, संगीत, नृत्य, ऋतु वर्णन, संयोग–वियोग श्रृंगार तथा शास्त्रार्थ आदि का चित्रण किया है। इस कृति में उस समय के समाज की विभिन्न स्थितियों का सजीव चित्रण मिलता है। इस ग्रन्थ के मूल विषय पर विचार करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं –

''पृथ्वीराज रासो ऐसी ही रसमय साकार युद्धबद्ध कथा थी जिसका मुख्य विषय वादक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु पराजय था। वास्तव में यह ग्रन्थ इसी कथा से सम्बन्धित हैं। इसमें युद्धवर्णन के साथ–साथ प्रेमकथा का वर्णन है और प्रेमकथा का यह वर्णन युद्ध वर्णन को गहरा और मार्मिक बनाता है।''

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता–अप्रामाणिकता के विषय में विवाद पाया जाता है। विभिन्न विद्वानों के इस विषय में विभिन्न मत रहे हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इसमें वर्णित घटनाओं तथा तिथियों का मेल ऐतिहासिक तथ्यों से ठीक नहीं बैठता। इस ग्रन्थ के चार संस्करण उपलब्ध हैं जिनमें से चौथा संस्करण सबसे अधिक विस्तृत है। इस ग्रंथ की चार पांडुलिपियां अलग–अलग शहरों में प्राप्त हुई है। सबसे विस्तृत संस्करण को नागरी प्रचारणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित किया गया है। इन चारों ग्रन्थों की प्रामाणिकता भ्रमपूर्ण है। कुछ विद्वान इसे प्रामाणिक रचना मानते हैं तथा कुछ इसे अप्रामाणिक मानते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' सम्बन्धी विचार करते हुए हमें दोनों कोटियों के विद्वानों के मत का अध्ययन करना होगा।

1.2.3.1 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता :-

'पृथ्वीराज रासो' आदिकाल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विशाल महाकाव्य है। जिसमें कवि चन्द ने अपने सखा एवं आश्रयदाता पृथ्वीराज के जीवन तथा युद्धों का पूरी यर्थाथता के साथ चित्रण किया है। इस ग्रन्थ के कुल 1500 पृष्ठ हैं तथा सम्पूर्ण कथा को 69 सर्गों में बांटा गया है। इसमें कुल 1,00,000 छंद हैं। सारी कथा का वर्णन संवाद शैली में किया गया है। जिसमें कवि की पत्नी प्रश्न करती है तथा कवि उसके उत्तर देता है। इसमें यज्ञ कुंड से चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति तथा चौहानों की अजमेर राज्य स्थापना से लेकर पृथ्वीराज के पकड़े जाने का विस्तृत वर्णन है। ग्रंथ को पढ़कर लगता है कि जैसे इसका अंतिम भाग चंद के पुत्र जल्हण ने पूर्ण किया हो क्योंकि इस ग्रंथ में इसका उल्लेख किया गया है–

पुस्तक जल्हण हत्थ दे, चलित गज्जन नृप काज।
रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत भोज उद्दरिय जिमि।
पृथ्वीराज सुजम कवि चन्द कृत चन्द नन्द उद्धरिय तिमि।।

पृथ्वीराज रासो की साहित्यिक गरिमा को सभी विद्वानों ने स्वीकारा है। यह एक सफल महाकाव्य है जिसमें वीर तथा श्रृंगार दोनों रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। सर्वप्रथम कर्नल टाड ने 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक मानकर बंगाल एशियाटिक सोसायटी से इसका प्रकाशन आरम्भ करवाया। उसी समय डॉ. व्हूलर को कश्मीर यात्रा के समय कश्मीर के राजकवि जयानक द्वारा लिखा गया। संस्कृत में 'पृथ्वीराज विजय' की खंडित प्रति मिली। डॉ. व्हूलर ने 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रमाणिक तथा 'पृथ्वीराज विजय' को प्रमाणिक रचना माना है। क्योंकि पृथ्वीराज विजय की घटनाएं तथा तिथियाँ इतिहास से मेल खाती हैं। जबकि रासो में दिए गए संवत तथा तिथियों का इतिहास से 100 वर्षों का अंतर है। तभी से पृथ्वीराज रासो की प्रमाणिकता का प्रश्न पैदा हो गया। कुछ विद्वान इस रचना को प्रमाणिक मानने लगे तथा कुछ अप्रमाणिक। इन दोनों वर्गों का विस्तार से वर्णन निम्नलिखित है।

प्रामाणिक मानने वाला वर्ग :-

पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक मानने वाले वर्ग में डॉ. ग्रियर्सन, बाबू श्याम सुन्दर दास, मथुरा प्रसाद दीक्षित, मोहनलाल विष्णुलाल, अयोध्यासिंह उपाध्याय, डॉ. दशरथ शर्मा, मिश्रबन्धु आदि विद्वान प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने विभिन्न तर्क दे कर इसकी प्रामाणिकता सिद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ की प्रमाणिकता सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण तर्क दिए हैं।

1. 'पृथ्वीराज विजय' की जो प्रति मिलती है वह एक खंडित प्रति है। इसलिए जब तक यह पूर्ण रूप से प्राप्त न हो जाए तब तक इसकी प्रमाणिकता के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
2. पृथ्वीराज, जयचन्द, कालिंजर, राजा परमार आदि के विषय में प्राप्त दान–पत्र और शिलालेख 'रासो' की पुष्टि करते हैं तथा साथ ही खेटी की 'तबकात–इ–नासिरी' में भी संवत्–साम्य मिलता है। वास्तव में कवि के अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णनों तथा प्रक्षिप्त अंशों के कारण ही अनेक भ्रांतियां उत्पन्न हुई हैं। किन्तु केवल प्राक्षप्त अंशो के ही कारण सम्पूर्ण ग्रंथ को अप्रमाणिक नहीं ठहराया जा सकता।
3. डॉ. श्यामसुन्दरदास चन्द का पृथ्वीराज के दरबार में होना सत्य मानते हैं और यह भी मानते हैं कि उन्होंने अपने आश्रयदाता की गाथा विभिन्न छन्दों में लिखी, किन्तु समयानुसार उसकी कथा, भाषा आदि विषयों में इतना अंतर हो गया कि अब उसके मूल रूप का पता लगाना कठिन है। 'हरिऔध' जी के मतानुसार भाषा, छंद तथा ऐतिहासिक घटनाओं की दृष्टि से 'रासो' बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। उसमें प्रक्षिप्त अंश उसी प्रकार हैं जिस प्रकार 'महाभारत' में प्रक्षिप्त अंश हैं।
4. पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या को नौ पट्टे – परवाने मिले हैं, जिनमें चन्द के पुत्र जल्हण का उल्लेख और पृथ्वीराज की मुहर में सिंहासन पर बैठने की तिथि 1065 है, जो चन्द द्वारा दी गई तिथि से साम्य रखती है। 'तबकात–इ–नासिरी' में जो तिथियां मिलती हैं, उनमें और रासो में दी गई तिथियों में नियमित रूप से 90-91 वर्षों का अन्तर मिलता है। इस अन्तर का एक कारण यह भी हो सकता है कि चन्द ने पृथ्वीराज का संवत् चलाने के लिए एक संवत् की कल्पना की हो, जो वैमनस्य के कारण जयचन्द के पूर्वजों से लेकर जयचन्द तक के 90-91 वर्ष से रहित रखा गया हो।
5. ईसा की सातवीं–आठवीं शताब्दी से और फिर ईरानी साहित्य के प्रभावान्तर्गत भारत में चरित काव्य लिखने की प्रथा थी, जिसमें ऐतिहासिकता की ओर कम ध्यान तथा काव्यगत आनन्द की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। ऐसे ग्रन्थों में राजाओं का ऐश्वर्य, नृत्य गान, युद्ध, जल–क्रीड़ा आदि को महत्व दिया जाता है। उनमें ऐतिहासिक वस्तुओं तथा व्यक्तियों का वर्णन कल्पना के समावेश द्वारा किया जाता था। भारतीय कवियों का दृष्टिकोण भी आदर्शवादी था। वे अपने चरित नायक की गाथा में जीवन की ऐसी बातें नहीं रखते थे, जो वास्तविक तथ्यपूर्ण तथा विषम होती थी। वे अपने नायकों का चित्रण धीरोदत्त रूप में करते थे। नायक के नैतिक पतन में उनका बिल्कुल विश्वास नहीं था।

ऐसी परिस्थिति में भारतीय चरित काव्य में इतिहास खोजना उन कवियों के साथ अन्याय करना होगा। 'रासो' ऐसा ही चरित–काव्य है। वह पृथ्वीराज की ऐतिहासिक जीवनी नहीं है, जिसमें पल–पल पर घटित घटनाओं के बीच से गुजरते हुए उनके जीवन का विकास दिखाया जाता।

6. मुनि जिनवितय द्वारा प्रकाशित (पुरातन प्रबन्ध संग्रह) में चन्द में नाम से चार छप्पय मिलते हैं। जिनकी भाषा परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश के निकट है। जिस प्रति से ये छप्पय उद्धत किए गए हैं, उसका लिपि काल पन्द्रहवीं शताब्दी है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उस समय भी लोगों को चन्द–रचित छप्पयों का ज्ञान था। इन छप्पयों के प्रकाशिक हो जाने के बाद चन्द और पृथ्वीराज के समकालीन होने, चन्द का पृथ्वीराज के दरबार में होने और उनके द्वारा ग्रन्थ के रचे जाने में कोई सन्देह नहीं रह जाता।
7. रासो में अरबी–फारसी शब्दों का मिलना आश्चर्यजनक नहीं होना चाहिए। आक्रमण होने से पूर्व भारतवर्ष में मुसलमानों का आगमन आरम्भ हो चुका था और उनमें सम्पर्क स्थापित हो गया था। दूसरे चन्द लाहौर के रहने वाले थे। इसलिए उनकी भाषा में अरबी–फारसी शब्दों का पाया जाना अस्वभाविक नहीं है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होने लिखा है :"मैं उन विद्वानों के मत को मत अपना मत जानता हूं जो स्वीकार करते हैं कि रासो में कुछ न कुछ चन्द की प्रमाणिक रचनाए हैं अवश्य।" डॉ. द्विवेदी के अनुसार रासो की रचना शुक–शुकी के संवाद से हुई थी। अतः जिन सर्गों का आरम्भ शुकी संवाद से होता है उन्हीं को प्रमाणिक मानना चाहिए। इसमें इतिहास के सत्यों को ढूंढना गलत है। काव्य को इतिहास–सम्मत कथाओं, घटनाओं एवं विवरणों को अतिरंजित बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का हिन्दी के महाकाव्यों में प्रथम स्थान है।

1.2.3.2 अप्रामाणिक मानने वाला वर्ग :-

पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक मानने वाले वर्ग कुछ घटनाओं का ब्यौरा देते हैं। जो इतिहास से मेल नहीं खाते जैसेः–

1. कश्मीरी कवि जयानक कविकृत 'पृथ्वीराज विजय' में जयानक ने पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और माता का नाम कर्पूर देवी लिखा है। जिसका समर्थन हाँसी के शिलालेख से होता है। किन्तु रासो के अनुसार उनकी माता का नाम कमला सिद्ध होता है। इसी प्रकार उसमें वर्णित क्षत्रियों की उत्पति, पृथ्वीराज का गोद लिया जाना, चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भगिनी, भाई पुत्र, संयोगिता–हरण, पृथ्वीराज का देहान्त आदि अनेक बातें असंगत सिद्ध होती हैं।
2. चंद द्वारा प्रस्तुत की गई कुछ तिथियाँ इस प्रकार हैं। पृथ्वीराज का जन्म 1058, गोद लिया जाना 1061, कन्नौज जाना 1090, शहाबुद्दीन के साथ युद्ध 1101 किन्तु दानपत्रों, शिलालेखों आदि के अनुसार ये तिथियाँ अशुद्ध ठहरती हैं। फारसी में लिखे गए इतिहास–ग्रन्थों के आधार पर भी ये तिथियां अशुद्ध ठहरती हैं। जैसे फारसी के इतिहास–ग्रन्थों में शहाबुद्दीन के साथ युद्ध की तिथि 1191 मिलती है।
3. कुछ विद्वानों का मत है कि चंद नामक कोई कवि था ही नहीं। जयानक ने चन्द का उल्लेख नहीं किया। उसने केवल 'पृथ्वी भट्ट' का उल्लेख किया है। हाँ, एक 'चन्द्रक कवि', या चन्द्रराज कवि का उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ यही निकलता है कि पृथ्वीराज के दरबार में चन्द नाम का कोई कवि नहीं था। यदि आया भी होगा तो जयानक कवि के कश्मीर लौट जाने के बाद। संभव तो यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र गोबिन्दराज या उसके भाई हरिराज के यहाँ कोई चन्द नाम का भाट

रहा हो और उसने अपने आश्रयदाता के पूर्वजों का वर्णन किया हो, और लिखते समय कल्पना से अधिक काम लिया हो।

4. रासो में चौहानों को अग्निवंशी बताया गया है जबकि प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखों के अनुसार वे सूर्यवंशी थे।
5. रासो में पृथ्वीराज की बहन का विवाह मेवाड़ के राजा समरसिंह से दिखाया गया है। यह बात शिलालेखों में स्पष्ट नहीं होती क्योंकि पृथ्वीराज के बाद समरसिंह 119 वर्ष तक जीवित रहे। इससे लगता है कि समरसिंह पृथ्वीराज के समकालीन नहीं थे।
6. ग्रंथ की भाषा अव्यवस्थित है। उसमें संस्कृत प्राकृत के अनुकरण पर अनुस्वरांत स्वरों की भरमार है। कहीं–कहीं भाषा का आधुनिक रूप भी मिल जाता है। विशेषतः खड़ी बोली के रूप में। उसमें अरबी–फारसी के भी बहुत से शब्दों का प्रयोग हुआ है।
7. अनंगपाल न तो दिल्ली का शासक था और न ही उसने पृथ्वीराज को गोद लिया था।
8. 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित शहाबुद्दीन द्वारा समरसिंह का वध और पृथ्वीराज द्वारा सामेश्वर का वध भी ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।
9. पृथ्वीराज की माता का नाम, माता का वंश आदि ऐतिहासिक शिलालेखों से मेल नहीं खाते। पृथ्वीराज की माता अनंगपाल की पुत्री नहीं थी। क्योंकि शिलालेखों में उसे गहरवार वंश बताया गया है।
10. रासो के अनुसार पृथ्वीराज ने भीमसिंह का वध किया पर यह बात भी ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार ठीक नहीं है।
11. विद्वान ओझा जी महाराज तथा जयचन्द की शत्रुता को भी उचित नहीं मानते। उनके अनुसार संयोगिता स्वंयवर वाली घटना भी सत्य नहीं है।
12. शहाबुद्दीन गौरी की मृत्यु पृथ्वीराज के हाथों न होकर गरवरों के हाथों हुई। इसलिए यह कहना गलत है कि उसे पृथ्वीराज ने मारा था।
13. चन्द ने पृथ्वीराज के 11 वर्ष से लेकर 26 वर्ष तक की आयु तक 14 विवाहों का वर्णन किया है जो असंगत प्रतीत होता है। रासो को अप्रामाणिक मानने वाले वर्ग में डॉ. व्हूलर, श्यामलदास मुरारिदीन, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मुंशी देवी प्रसाद, आचार्य शुक्ल, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि हैं।

प्रामाणिकता–अप्रामाणिकता के विवादों से अलग होकर इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि यह उत्कृष्ट रचना है। यह एक ऐसा घटना प्रधान काव्य है जिसमें वीर तथा श्रृंगार का अद्भुत समन्वय है। कवि ने एक ओर तो युद्ध का वर्णन करते हुए वीरता एवं पराक्रम को साकार किया है और दूसरी ओर रूप सौन्दर्य एवं प्रेम का सरल चित्रण किया है। प्रेमवर्णन करते समय कवि ने कहीं भी नैतिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। चंद पृथ्वीराज के ऐसे सखा थे जिन्होंने पृथ्वीराज का साथ अंत तक निभाया। इसलिए उसने युद्ध क्षेत्र के दृश्यों का चित्रण अद्वितीय एवं ध्वनियों के साथ–साथ बिम्बों में बांध कर प्रस्तुत किया। भाव सौन्दर्य की वृद्धि के लिए कवि ने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है जैसे अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति, यमक इत्यादि। यह ग्रन्थ पिंगल शैली में लिखा गया है तथा इसमें 69 छन्द पाए जाते हैं। यह भाषा का वह रूप है जिसमें विभिन्न राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। यह एक ऐसा उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ है जो स्वतंत्रता की बलिदेवी पर प्राण न्यौछावर करने तथा देश जाति तथा अपने गौरव, प्रतिष्ठा के लिए मर–मिटने के लिए तैयार रहने का संदेश देती है।

पृथ्वीराज रासो एक सर्वश्रेष्ठ काव्य कृति है। यदि वह एक कवि की रचना होती तो हिन्दी साहित्य का शाहनामा बन जाती। यह एक महाकाव्य के रूप में प्रसिद्ध है। डॉ. श्यामसुन्दर दास इसे विशालकाय प्रबन्ध काव्य मानते हैं। इसमें भारतीय अपराजेयता के दर्शन होते हैं। यह विशेषता हमारे देश के इतिहास का रस है। इस रचना में केवल वीरतापूर्ण चित्रण ही नहीं है, इसमें उसके समाज का मार्मिक चित्रण भी मिलता है।

1.2.3.3 रासो की अर्द्ध प्रामाणिकता

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुनीति कुमार चटर्जी, अग्रचन्द नाहरा, कविराज, मोहन सिंह विद्वान रासो को अर्द्धप्रामाणिक ग्रन्थ स्वीकार करते हैं। इन विद्वानों का विचार है कि रासो दसवीं शताब्दी के साहित्य के काव्य रूप से सम्बन्ध रखता है। उसकी संवाद प्रवृत्ति संदेश रासक के समान हैं। उस पुस्तक में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की प्रवृतियां भी दिखाई देती हैं। रासो ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है अपितु काव्य ग्रन्थ है। अतः उसमें अतिशयोक्ति आ सकती है। यदि उसमें शुक और शुकी के संवाद रख लिए जाए, शेष निकाल दिये जाए तो यह ग्रन्थ प्रामाणिक सिद्ध होता है।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि चन्दबरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' न तो पूर्णतः प्रामाणिक ग्रन्थ है और न ही यह सर्वथा अप्रामाणिक ही सिद्ध होता है। ऐसी अवस्था में जब तक कोई और नई सामग्री प्रकाश में नहीं आ जाती, हमें उसे अर्द्धप्रामाणिक ग्रन्थ ही स्वीकार करना होगा।

1.2.4 सारांश :

किसी भी युग के साहित्य का स्वरूप–विश्लेषण एवं मूल्यांकन उस युग के कवियों तथा लेखकों की रचनाओं के आधार पर किया जाना उचित होता है, क्योंकि रचनाकार उसी मनोदृष्टि का संचय करता है जो उसे समाज से प्राप्त होती है।

पृथ्वीराज रासो का रचियता चन्दबरदायी आदिकाल का सर्वश्रेष्ठ कवि है। वे पृथ्वीराज चौहान के सखा, सामन्त एवं राजकवि थे। कवि ने पृथ्वीराज चौहान के जीवन तथा वीर कृतियों का बड़ा सजीव एवं यथार्थ चित्रण अपने वृहताकार महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में किया है। 'रासो' संवादात्मक शैली में हैं। रासो की साहित्यिक–गरिमा की सभी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकारा है। यह एक सफल महाकाव्य है, जिसमें वीर और श्रृंगार रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। पृथ्वीराज रासो एक ऐसी कथा है जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण और शत्रु पराजय था। इसमें युद्ध वर्णन के साथ–साथ प्रेमकथा का वर्णन है। इस महाकाव्य की प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता के विषय में विवाद पाया जाता है। सभी अपने–अपने तर्कों द्वारा सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। एक वर्ग ऐसा है जो इस ग्रंथ को अर्द्धप्रामाणिक मानता है। अन्त में हम कह सकते हैं कि चन्दबरदायी कृत 'पृथ्वीराज रासो' न तो पूर्णतः प्रामाणिक है ग्रन्थ है और न ही अप्रामाणिक ही सिद्ध होता है। ऐसी अवस्था में जब तक कोई नई सामग्री प्रकाश में नहीं आती, हमें इसे अर्द्धप्रामाणिक ग्रन्थ ही स्वीकार करना होगा।

1.2.5 सहायक पुस्तकें :

1. हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास – डॉ. कृष्ण भावुक
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास – डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त
4. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – डॉ. रामकुमार वर्मा
5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी

1.2.6 शब्दावली :

पराकाष्ठा	–	चरम सीमा, हद
ऐश्वर्य	–	धन, सम्पत्ति
पराक्रम	–	शक्ति, बल, सामर्थ्य
अलौकिकता	–	विलक्षणता
संवेदनशील	–	अनुभवी
मार्मिकता	–	प्रभाव डालने वाला

1.2.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. चन्दबरदायी का जीवन परिचय देते हुए उसके साहित्य का विवेचन कीजिए।
2. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता–अप्रामाणिकता पर प्रकाश डालिए।

पाठ संख्या : 1.3 **लेखिका : डॉ. एस.के. खुमार**

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण–परिभाषा और भेद ईकाई की रूपरेखा

1.3.0 उद्देश्य
1.3.1 प्रस्तावना
1.3.2 संज्ञा–परिभाषा और भेद
1.3.3 सर्वनाम–परिभाषा और भेद
1.3.4 विशेषण–परिभाषा और भेद
1.3.5 क्रिया–परिभाषा और भेद
1.3.6 क्रिया विशेषण– परिभाषा और भेद
1.3.7 सारांश
1.3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.3.0 उद्देश्य :

भाषा में वाक्यों के दो प्रकार के शब्द ही प्रमुख होते है– 1.नाम या संज्ञा 2.क्रिया। नाम के तीन भेद है– संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण। इन तीनों में प्रमुखता नाम है, क्योंकि नाम सभी नामों के स्थान पर आ सकते हैं और विशेषण शब्द इनकी विशेषता बताते हैं और सदा ही इनके साथ रहते हैं। रूप रचना के आधार पर शब्दों के दो भेद किए जाते हैं – 1. विकारी–जिनका रूप परिवर्तन होता है। 2. अविकारी–जिनका रूप परिवर्तन नहीं होता। प्रस्तुत अध्याय में हम मुख्यतः विकारी शब्दों का अध्ययन करेंगे। इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् हम निम्नलिखित तथ्यों से परिचित हो सकेगे–

1. संज्ञा तथा उनके भेदों के विषय मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
2. सर्वनाम की परिभाषा तथा भेदों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. विशेषण तथा, उसके भेदों से अवगत हो सकेंगे।
4. क्रिया के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. क्रिया विशेषण अविकारी शब्दों में आता है। इसके विषय में विस्तृत व्याख्या की गई है, उससे परिचित हो सकेंगे।

1.3.1 प्रस्तावना :

प्रस्तुत पाठ में आपके पाठयक्रम के अनुसार व्याकरण सम्बंधी आवश्यक जानकारी दी जाएगी। मनुष्य एक विकसित प्राणी है। उसमें चिन्तन और मनन की शक्ति है। साथ ही उसे एक ऐसा वरदान भी मिला है, जिससे वह अपने विचारों तथा भावों को स्पष्टता तथा विस्तार से दूसरों को प्रकट कर सकता है। यह वरदान है– भाषा। भाषा एक शब्दमय माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य बोलकर या लिख कर अपने विचारों को दूसरों पर सरलता,स्पष्टता,विस्तार तथा पूर्णता से व्यक्त कर सकता है। यह सामाजिक व्यवहार तथा अन्य सभी विषयों

का माध्यम होती हैं किसी भाषा का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए समझने,बोलने और लिखने की विधि सिखाता है। व्याकरण का मनोयोगपूर्वक अध्ययन करने वाले विद्यार्थी भाषा ज्ञान से तीव्र वेग से दक्षता प्राप्त करता है। व्याकरण द्वारा भाषा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने का कार्य अल्प समय में ही हो जाता हैं। अतः स्पष्ट है कि किसी भाषा के बोलने तथा लिखने के नियमों की पद्धति को व्याकरण कहते हैं। व्याकरण के अन्तर्गत कुछ निश्चित सिद्धान्त बनाए गए हैं। संज्ञा सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा क्रिया विशेषण आदि व्याकरण के अन्तर्गत आने वाले महत्वपूर्ण विषय हैं जिनका अध्ययन आगे किया जाएगा।

1.3.2 संज्ञा :

किसी व्यक्ति, वस्तु स्थान या भाव इत्यादि के नाम को संज्ञा कहते है।

जैसे–रामेश– व्यक्ति का नाम, दिल्ली, लुधियाना–स्थान का नाम,

सुख–भाव का नाम, मेज़–वस्तु का नाम

भेद :

संज्ञा के प्रमुख रूप से तीन भेद माने जाते हैः–

1. व्यक्तिवाचक संज्ञा :

जिस संज्ञा से किसी एक ही पदार्थ, स्थान या व्यक्ति का बोध हो, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते है। जैसे–महेश, गंगा, काशी।

2. जातिवाचक संज्ञा :

जिस संज्ञा से किसी जाति के सम्पूर्ण पदार्थों, स्थानों, व्यक्तियों, प्राणियों आदि का बोध हो, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते है। जैसे–पुस्तक, नगर, नदी, मनुष्य, गाय।

3. भाववाचक संज्ञा :

जो संज्ञा शब्द किसी गुण–दोष, शील–स्वभाव,भाव, संकल्पना का बोध कराते हैं, उन्हें भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे–बुढ़ापा, सुख, दुःख, प्रेम, घृणा, चंचलता, कठोरता, प्रार्थना इत्यादि।

कुछ विद्धान् संज्ञा के दो भेद और मानते हैं जो कि निम्नलिखित हैं :–

1. द्रव्यवाचक संज्ञा 2. समूहवाचक संज्ञा।

1.1.3.1 द्रव्यवाचक संज्ञा :

जिस संज्ञा शब्द से उस सामग्री या पदार्थ का बोध होता है, जिससे कोई वस्तु बनी है। उसे द्रव्यवाचक संज्ञा कहते है। जैसे–सोना, चांदी, तांबा, स्टील, लकड़ी इत्यादि।

1.1.3.2 समूहवाचक संज्ञा :

बहुत से संज्ञा शब्द ऐसे है, जो व्यक्ति के सूचक न होकर समूह आथवा समुदाय के सूचक हैं। ऐसे संज्ञा शब्दों को समूहवाचक संज्ञा कहते हैं जैसे–परिवार, कक्षा, पुलिस, सेना इत्यादि।

हिन्दी भाषा में जो संज्ञा शब्द है, उनके चार तत्व हैः–

1. प्रतिपादन
2. लिंग
3. वचन
4. कारक

प्रतिपादक स्वारान्त तथा व्यंजनांत दो प्रकार के है। लिंग भी दो प्रकार हैं– पुलिंग, स्त्रीलिंग। वचन भी दो प्रकार के होते हैं – एक वचन, बहुवचन। व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया इत्यादि शब्द विकारी होते है क्योंकि व्यवहार में लिंग, वचन, कारक आदि के प्रभाव से इनके मूल रूप में विकार आता हैं जब संज्ञा शब्द अपने सामान्य रूप में प्रयुक्त है तब इसे मूल रूप कहते हैं जैसे मोहन, पुस्तक, मेज़ इत्यादि। इन शब्दों में कारक चिह्न लगाने से इनका रूप विकृत होता है।

हिन्दी भाषा में संज्ञा का प्रयोग विभिन्न रूपों में होता हैं जिनका वर्णन नीचे दिया गया है :–

1. कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का उपयोग विशेष नाम से अनेक व्यक्तियों के लिए किया जाता है तब व्यक्तिवाचक संज्ञा भी जातिवाचक हो जाती है जैसे–

भारत में आज भी चन्द्रगुप्तों की कमी नहीं है।

इस वाक्य में चन्द्रगुप्त व्यक्तिवाचक संज्ञा है लेकिन यहाँ जातिवाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुई है।

2. कुछ जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की तरह होता है जैसे महात्मा गांधी को गांधी कहना, मैथिलीशरण गुप्त को गुप्त कहना।

3. कुछ शब्दों का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के रूप में होता है जैसे–गरीब पर दया करो, बड़ों का आदर करो, छोटों से प्यार करो। इसमें गरीबों, बड़ों तथा छोटों का प्रयोग जातिवाचक संज्ञा के रूप में होता है।

1.3.3 सर्वनाम :

जो शब्द संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं उन्हे सर्वनाम कहते हैं। सर्वनाम का प्रयोग करने से संज्ञा शब्दों को बार–बार दोहराना नहीं पड़ता। जैसे–

मोहन ने दरवाजाबंद किया फिर वह घर के अंदर आ गया।

इसमें मोहन शब्द संज्ञा है। लेकिन वह शब्द सर्वनाम है क्योंकि इसका प्रयोग संज्ञा शब्द मोहन की जगह पर किया गया है।

सर्वनाम के भेद :

सर्वनाम के पाँच भेद हैः–

1. पुरूषवाचक सर्वनाम
2. निश्चयवाचक सर्वनाम
3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम
4. प्रश्नवाचक सर्वनाम
5. सम्बन्धवाचक सर्वनाम

1. पुरूषवाचक सर्वनाम :

उत्तम पुरूष, मध्यम परूष तथा अन्य पुरूष के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग होता है, उन्हे पुरूषवाचक सर्वनाम कहते हैं पुरूषवाचक सर्वनाम तीन प्रकार के होते हैः–

1. उत्तमपुरूष सर्वनाम :– बोलने वाला अथवा लेखक जिन सर्वनामों का प्रयोग अपने लिए करता है उसे उत्तम पुरूष सर्वनाम कहते हैं। जैसे –

1. मै वहां जाऊंगा।
2. हम भारतवासी हैं।

इसमें मैं और हम उत्तमपुरुष सर्वनाम है।

2. मध्यमपुरूष सर्वनाम :– बोलने वाला जिससे बात करता है उसके लिए प्रयुक्त किए गए सर्वनाम मध्यम पुरूष सर्वनाम कहलाते हैं जैसे –

1. तुम कहाँ जा रहो हो।
2. तुम बातें काम करो।
3. आप कैसे हो।

इसे तुम, आप मध्यम पुरूष सर्वनाम हैं।

3. अन्य पुरूष सर्वनाम :– बोलने वाला जब किसी अन्य व्यक्ति, प्राणी के संबंध में जिन सर्वनामों का प्रयोग करता है।

उसे अन्यपुरूष सर्वनाम कहते हैं।

जैसे – 1. वह अच्छा लड़का है।
2. वे सज्जन पुरूष है।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम :– जिन सर्वनामों से किसी निश्चित प्राणी, वस्तु अथवा स्थान का बोध होता है। उन्हें निश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे यह, ये, वह, वे।

1. यह राम है, वह श्याम है।
2. वे भारतवासी हैं।

3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम :– जिस सर्वनाम से किसी प्राणी, वस्तु या स्थान का निश्चित बोध नहीं होता अनिश्यचवाचक सर्वनाम कहते हैं जैसे – कोई, कुछ

1. कोई आए या न आए हमें क्या।
2. दाल में कुछ काला है।
3. दूध में कुछ पड़ गया है।

4. प्रश्नवाचक सर्वनाम :– जिन सर्वनामों से किसी व्यक्ति, प्राणी, वस्तु, क्रिया–व्यापार आदि के विषय में व्यक्ति अथवा प्राणी के संबंध में प्रश्न करना हो तो कौन का प्रयोग होता है, अन्यथा क्या का जैसे कौन, क्या।

1. राम को कौन नहीं जानता?
2. तुम्हारा अभिप्राय क्या है?

5. संबंधवाचक सर्वनाम :– जिन सर्वनामों से संज्ञा के साथ सम्बन्ध का बोध होता है, उन्हें संबंधवाचक सर्वनाम कहते है। जैसे–जो, सो, वह।

1. जो मेहनत करता है, वह पास हो जाता है।
2. यह वही है, जिसे आपने पुरस्कार दिया था।

6. निजवाचक सर्वनाम :– जो उत्तम पुरुष, मध्य पुरुष और अन्य पुरुष का अपने आप का बोध कराए, वह निजवाचक सर्वनाम है जैसे

1. मैं आप पढ़ रहा हूँ
2. आप स्वयं देख ले।

1.3.4 विशेषण :

संज्ञा या सर्वनाम शब्दों की विशेषता (गुण, दोष, संख्या, परिमाण) आदि बताने वाले शब्द विशेषण कहलाते हैं जैसे–काला, लम्बा, सुन्दर, टेढ़ा–मेढ़ा आदि।

भेद :

विशेषण के पाँच भेद होते हैः–

1. गुणवाचक
2. संख्यावाचक
3. परिमाणवाचक
4. सार्वनामिक
5. सम्बन्धवाचक

1. गुणवाचक विशेषण :– जिन विशेषण शब्दों से किसी के गुण, दोष, रंग–रूप, आकार, प्रकार का बोध उसे गुणवाचक विशेषण कहते है। जैसेः–

गुण– योग्य, परिश्रम, उदार, ईमानदार

दोष–अयोग्य, आलसी, अनुदार, बेईमान।

रंग रूप– काला, गोरा, आकर्षक, सुन्दर, गुलाबी।

आकार प्रकार– लम्बा, चौड़ा, खुरदरा, गोल, चौरस।

स्वाद–खट्टा, कड़वा, मीठा, फीका।

गंध– सुगंधित, गंधहीन, दुर्गधपूर्ण।

अवस्था–बचपन, कमजोर, अमीर, गरीब, रोगी स्वस्थ।

देश–काल–पंजाबी, बनारसी, प्राचीन, नवीन।

2. संख्यावाचक विशेषण :– जिन विशेषण शब्दों से संख्या का बोध हो, उन्हें संख्यावाचक विशेषण कहते है।

जैसे–एक, दो, तीन, चौथा, इत्यादि।

संख्यवाचक विशेषण के दो भेद हैः–

1. निश्चित संख्यावाचक
2. अनिश्चित संख्यावाचक

1. निश्चित संख्यावाचक :– निश्चित संख्यावाचक के निम्नलिखित भेद हैंः–

1. गणनासूचकः– एक पुस्तक, पांच, खिलाड़ी, दस रूपए।
2. क्रम सूचकः– पहला,दूसरा, तीसरा
3. समुदाय सूचक– चारों व्यक्ति, तीनों विद्यार्थी, सैंकड़ों आम।
4. आवृत्ति सूचक– दुगुना, तिगुना, चौगुना।

2. अनिश्चित संख्यावाचक :– जिस विशेषण में वस्तु, प्राणी, अथवा पदार्थ की संख्या अनिश्चित रहती है, उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। जैसे – कुछ पुस्तकें, सब लोग।

3. परिमाण वाचक विशेषणः– जिन विशेषण शब्दों से किसी वस्तु, पदार्थ के माप या नाप तोल का बोध हो, उनहें परिमाण वाचक विशेषण कहते है। परिमाण वाचक विशेषण के दो भेद हैंः–

क) निश्चित परिमाण वाचक :– निश्चित परिमाणवाचक विशेषण किसी संज्ञा या सर्वनाम के निश्चित परिमाण का बोध कराते हैं। जैसे–चार गज़ कपड़, दस लीटर दूध।

ख) अनिश्चित परिमाण वाचक :– जिस अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण से किसी संज्ञा या सर्वनाम के निश्चित परिमाण का बोध न हो, उन्हें अनिश्चित परिमाण वाचक विशेषण कहते हैं। जैसे–कुछ आम थोड़ा दूध, बहुत घी, कम चीनी।

4. सार्वनामिक विशेषण :– जिन सर्वनाम शब्दों से किसी के विषय में संकेत पाया जाए, उन्हें सर्वनामिक, संकेत या निर्देशक विशेषण कहते है। जैसे–

1. यह घर हमारा है।
2. यह बालक अच्छा है।
3. उस श्रेणी में शोर हो रहा है।
4. तुम किस गली में रहते हो।

यही, यह, उस, तथा किस सार्वनामिक विशेषण है।

1.3.5 क्रिया :

जिस शब्द अथवा पद के द्वारा किसी काम का करना या होना पाया जाता है, उसे क्रिया कहते है। जैसे–

1. पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं।
2. सीता खेल रही है।
3. बच्चा रो रहा है।

उपयुक्त वाक्यों में उड़ रहे हैं, खेल रही है, रो रहा है–शब्दों से होने अथवा करने की प्रक्रिया का बोध होता है। इसलिए ये क्रिया पद हैं।

क्रिया के दो भेद होते हैंः–

1. अकर्मक क्रिया।
2. सकर्मक क्रिया।

1. अकर्मक क्रिया :– जिस क्रिया में कर्म की आवश्यक्ता नहीं होती अर्थात् जिस क्रिया के फल और व्यापार दोनों कर्ता में रहते हैं उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं।

जैसे – राम सोता है। यहाँ 'सोना' क्रिया का फल और व्यापार दोनों कर्ता राम पर पड़ रहा है। इसलिए 'सोना' अकर्मक क्रिया है।

2. सकर्मक क्रिया :– जिस क्रिया के प्रयोग में कर्म की आवश्यक्ता पड़ती है, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। सकर्मक क्रिया कर्म के अभाव में अपना पूरा अर्थ प्रकट करने में असमर्थ रहती है। दूसरे शब्दों में जिस क्रिया के व्यापार का फल कर्म पर पड़ता है, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे–

1. मोहन पेड़ देख रहा है।
2. श्याम ने घड़ी खरीदी।
3. राम पत्र लिखेगा।
4. रमेश खाना खाएगा।

इन वाक्यों में पेड़, घड़ी, पत्र, खाना शब्द कर्म है। इनके आभाव में वाक्य अपूर्ण रह जाते है और अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

सकर्मक और अकर्मक क्रिया की पहचान :– सकर्मक क्रिया की पहचान यह है कि क्रिया के साथ 'क्या' का प्रश्न करना जरूरी है। जैसे एक वाक्य है 'मैं पुस्तक पढ़ता हूँ। अगर इसे प्रश्न के रूप में पूछा जाए तो 'मैं' क्या पढ़ता हूँ'– इसका उत्तर होगा 'पुस्तक' इसलिए यह सकर्मक क्रिया है। जिन वाक्यों में 'क्या' द्वारा प्रश्न पूछने की आवश्यकता न हो वह अकर्मक क्रिया होती है। जैसे वह भागता है। इसमें प्रश्न नहीं हो सकता कि वह क्या भागता है?

अपूर्ण क्रियाः–

पूरक संज्ञा या विशेषण के बिना जो क्रिया पूर्ण अर्थ का बोध न कराये वह अपूर्ण क्रिया होती होती है जैसे–यह है, वह था, मैं हूँगा आदि वाक्यों में कुछ कमी है, इन्हें पूरकों द्वारा पूर्ण करके हम कह सकते हैं। यह बालिका है, वह योग्य लड़का है, मैं सत्यवादी बनूँगा।

पूरक :

क्रिया में पूरक का विशेष महत्व होता है। जो संज्ञा या विशेषण अपूर्ण अकर्मक या अपूर्ण सकर्मक क्रियाओं के अर्थ को पूर्ण तथा स्पष्ट करने के लिए आते हैं वे पूरक कहलाते हैं।

संयुक्त क्रियांए :

दो या दो से अधिक धतुओं से बनी क्रियाएं 'संयुक्त क्रिया' कहलाती है। ये कई अर्थो में होती हैं जैसे

मैं खेलने लगा हूँ (खेलना + लगना + होना)
मुझे पढ़ने दो (पड़ना + देना)
मैं उठ चुका हूँ (उठना + चुकना)

सकर्मक क्रिया के भेद :

सकर्मक क्रिया के दो भेद हैं :–

1. **एककर्मक क्रिया :–** जिसमें केवल एक ही कर्म का प्रयोग हो उसे एककर्मक कहते हैं। जैसे–राम पुस्तक पढ़ता है। इसमें केवल एक कर्म है – पुस्तक।

2. **द्विकर्मक क्रिया :–** जिस क्रिया में दो कर्म हो उसे द्विकर्मक कहते हैं। जैसे– अनिल प्रदीप को संस्कृत पढ़ाता है। इसमें प्रदीप और संस्कृत दो कर्म हैं।

प्रयोग की दृष्टि से क्रिया के दो भेद हैं :–

1. **सामान्य क्रिया :–** किसी एक क्रिया का प्रयोग होने पर सामान्य क्रिया होती है। जैसे–वह गया, उसने खाया आदि।

2. **संयुक्त क्रिया :–** यदि दो या दो से अधिक क्रियाएं साथ–साथ आएं उसे संयुक्त क्रिया कहते हैं। वह पढ़ चुका, राम आ गया।

3. **नाम धातु क्रिया :–** संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण शब्दों से बने क्रियापद नामधातु क्रिया कहलाते हैं। जैसे– लजाना, अपनाना, शर्माना इत्यादि शब्द लाल, शर्म, अपना इत्यादि शब्दों से बने हैं। संज्ञा में हाथ से नाम धातु बना है हथिया और क्रिया बनती है– हथियाना। इसी तरह विशेष में गर्म से गर्मी नामधातु और गर्माना सामान्य क्रिया बनती हैं सर्वनाम से 'अपना' से नाम धातु बनती है 'अपना' और क्रिया का सामान्य रूप 'अपनाना' बनता है।

4. प्रेरणार्थक क्रिया :– जब कर्ता कोई काम करता है और यदि वह काम स्वयं न करके दूसरे को उसके लिए प्रेरित करे तो वहां अकर्मक हो जाती है और सकर्मक क्रिया द्विकर्मक हो जाती है। ऐसी क्रिया को प्रेरणार्थक क्रिया कहते है। जैसे–

अकर्मक से सकर्मक

मोहन सोता है–मोहन बच्चे को सुलाता है।

तुम खा रहे हो– तुम बच्चे को खिलाते हो।

मोहन पढ़ रहा है– मोहन मुझे पढ़ाता है।

5. पूर्वकालिक क्रिया :– मुख्य क्रिया से पहले आने वाली क्रिया का वाचक पद पूर्वकालिक क्रिया कहलाता है।

जैसे–वह खाकर स्कूल गया।

इसमें खाकर पूर्वकालिक क्रिया है।

1.3.6 क्रिया विशेषण :

क्रिया की विशेषता बताने वाले अविकारी शब्दों को क्रिया विशेषण कहते हैं। जैसे'–

वह तेज़ दौड़ता है।

इसमें तेज़ अव्यय दौड़ना क्रिया की विशेषता बता रहा है। अतः यह क्रिया विशेषण हैं।

क्रिया विशेषण के पाँच भेद होते हैः–

1. **कालवाचक :–** जो क्रिया के काल का बोध कराए, उन्हें काल वाचक क्रिया विशेषण कहते हैं। जैसे–अब, तब, आज, कल, परसों, अभी, दिन भर, प्रति दिन, सदा इत्यादि।
2. **स्थानवाचक :–** जो अव्यय क्रिया के होने के स्थान पर बोध कराएं, उन्हें स्थानवाचक क्रिया विशेषण कहते हैं। जैसे– अन्यत्र, यहां, इधर, ऊपर, बाहर, समीय हत्यदि।
3. **परिमाणवाचक :–** जिन शब्दों से क्रिया के परिभाण का बोध होता है। उन्हें परिमाणवाचक क्रिया विशेषण कहते हैं। जैसे– बहुत थेड़ा, खूब, कम, लगभग, इतना, जितना इत्यादि।
4. **रीतिवाचक क्रिया विशेषण :–** जिन शब्दों से क्रिया के होने की रीति अथवा प्रकार का बोध होता है।

रीतिवाचक क्रिया विशेषण के अन्तर्गत कारण, निषेध, निश्यच, अनिश्चय, स्वीकार के भाव को प्रकट करने वाले सभी क्रिया विशेषण आ जाते हैं। जैसे–

निश्चय–निस्संदेह, अवश्य, वास्तव मे।

अनिश्चय–शायद, यथासम्भव, कदाचित्।

प्रकार–ऐसे, वैसे, जैसे, तैसे, अचानक, झटपट।

स्वीकार–हां, सच, जी, जी हां, ठीक।

निषेध– नहीं, मत, न।

अवधारण–तो, ही बस।

कारण–इसलिए, अतः क्योंकि।

5. प्रश्नवाचक :– जिन क्रिया विशेषणों से प्रश्न का बोध होता है, उन्हें प्रश्नवाचक क्रिया विशेषण कहते हैं।

जैसे– कब, कहां, क्यों, कैसे। क्रिया विशेषण का वर्गीकरण तीन आधरों पर होता है– प्रयोग रूप और अर्थ। प्रयोग के अनुसार क्रिया विशेषण के तीन प्रकार होते है– साधारण, संयोजक और अनुबद्ध। जिन क्रिया विशेषणों का प्रयोग किसी वाक्य में स्वतंत्र होता है। उसे साधारण क्रिया विशेषण कहते हैं। जिनका संबंध उपवाक्य से होता है। उन्हें संयोजक क्रिया विशेषण कहते हैं अनुबद्ध क्रिया विशेषण वह है जिसका प्रयोग अवधारणा के लिए किसी भी शब्द भेद के साथ होता है।

रूप के अनुसार क्रिया विशेषण तीन प्रकार के होते हैः– मूल, यौगिक, स्थानीय।

जो क्रिया विशेषण दूसरे शब्द से नहीं बनता वे मूल क्रिया विशेषण कहलाते हैं। जो क्रिया शब्द दूसरे शब्दों मे प्रत्यय व शब्द जोड़ने से बनते हैं, उन्हें यौगिक क्रिया विशेषण कहते है। जैसे–दिनभर, रातभर, रात तक। जो शब्द बिना किसी रूपांतर के क्रिया विशेषण के समान उपयोग में आते है। उन्हें स्थानीय क्रिया विशेषण कहते हैं, जैसे–तुम मेरी मदद पत्थर करोगे। वह अपना सिर पढ़ेगा।

1.3.7 सारांश :

व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया तथा विशेषण शब्द विकारी होते हैं क्योंकि व्यवहार में लिंग वचन, कारक आदि के प्रभाव से इनके मूल रूप में विकार आ जाता है।

संज्ञा के तीन भेद होते हैं– व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, भाववाचक। संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्दो को सर्वनाम कहते हैं। सर्वनाम पांच प्रकार के होते हैं– पुरूषवाचक, निश्चयवाचक, आनिश्चयवाचक, प्रश्नवाचक तथा संबंधवाचक। संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं। जिन शब्दों से किसी काम का करना या होना पाया जाए उसे क्रिया कहते है। भाषा में कोई भी वाक्य क्रिया के बिना पूर्ण नही होता। क्रिया के आधार अकर्मक तथा सकर्मक क्रिया है। जो क्रिया की विशेषता बताते है क्रिया विशेषण कहलाते हैं। क्रिया विशेषण के पांच भेद हैः– स्थानवाचक, कालवाचक, परिणमावाचक, रीतिवाचक तथा अवधारक इस पाठ में उपयुक्त विकारी तथा अविकारी शब्दों का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह केवल उसका सार मात्र है।

1.3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. संज्ञा की परिभाषा लिखते हुए उसके भेदों का पूर्णपरिचय दीजिए।
2. संज्ञा और सर्वनाम में क्या अन्तर है, उदाहरण दे कर स्पष्ट करें।
3. विशेषण का लक्षण लिखकर उसके भेदों का परिचय दीजिए।
4. कर्म की दृष्टि से क्रिया के भेदों को सो दाहरण लिखिए।
5. प्रयोग के अनुसार क्रिया–विशेषण के कितने भेद है? सोदाहरण लिखिए।

पाठ संख्या : 1.4

जयशंकर प्रसाद

इकाई की रूपरेखा

1.4.0 उद्देश्य
1.4.1 प्रस्तावना
1.4.2 जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व और कृतित्व
1.4.3 काव्यगत विशेषताएँ
1.4.4 सप्रसंग व्याख्या
1.4.5 लघु प्रश्न–उत्तर
1.4.6 सहायक पुस्तकें
1.4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.4.0 उद्देश्य

जयशंकर प्रसाद को छायावादी काव्य–धारा के श्रीगणेशकर्ता माना गया है। वह आधुनिक हिन्दी साहित्य के न केवल महानतम कवि हैं बल्कि एक सफल नाटककार और कथाकार भी हैं। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप :

- जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- जयशंकर प्रसाद की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- काव्य की व्याख्या और विश्लेषण कर सकेंगे।

1.4.1 प्रस्तावना

छायावाद के प्रवर्त्तक जयशंकर प्रसाद ने अपनी पैनी दृष्टि से आधुनिक जीवन की विषमताओं को भली प्रकार से देखा, उस विषमता के विभिन्न पहलुओं पर गंभीरता से गहन अध्ययन किया। उनका यह दृष्टिकोण ही उन्हें आज के पाठकों के समक्ष भी नवीन चिंतक के रूप में न केवल स्थापित करता है बल्कि उन्हें मार्गदर्शक के रूप भी अग्रणी खड़ा कर देता है। साहित्य की विविध विधाओं में अपने कोमल भावों को अभिव्यक्ति देने के कारण जहां उनकी बहुमुखी प्रतिभा का ज्ञान होता है, वहीं काव्य में उनके जीवन–दर्शन की अमिट छाप भी स्पष्ट दिखाई देती है। छायावाद के अंतर्गत काव्य का सृजन करना तथा 'कामायनी' जैसे महाकाव्य से हिन्दी साहित्य को अमूल्य धरोहर देना, उन्हें साहित्य–जगत् के आकाश पर सदैव चमकने वाला एक नक्षत्र बना देता है। 'आँसू' के माध्यम से प्रेम का निरूपण करते हुए जयशंकर प्रसाद भारतीय संस्कृति के गहन अध्येयता के रूप में भी हमारे समक्ष आते हैं।

1.4.2 जयशंकर प्रसाद : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व :

जयशंकर प्रसाद का जन्म सन् 1889 ई. में काशी के गोवर्द्धन सराय, मुहल्ले में एक सम्पन्न वैश्य परिवार में हुआ। इनके पिता देवा प्रसाद तम्बाकू सुरती और सुंघनी के प्रसिद्ध व्यापारी थे। इसीलिए इनका घराना 'सुंघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध है। जयशंकर प्रसाद ने सातवीं कक्षा तक की पढ़ाई बनारस में की। इसके पश्चात् घर पर ही उनकी संस्कृत, अंग्रेज़ी शिक्षा की व्यवस्था की गई। किशोरावस्था में ही वह पहले पिता तथा बाद में माता की छत्रछाया से वंचित हो गये। जब तक प्रसाद सत्रह वर्ष के हुए तब उनके एकमात्र संरक्षक और अभिभावक बड़े भाई शंभुरत्न का भी देहांत हो गया। इन घोर आपदाओं के बीच भी प्रसाद का व्यक्तित्व निरंतर विकास करता रहा। परिवार की बिगड़ती स्थिति को सुधारने हेतु प्रसाद ने कड़ा परिश्रम किया। दुकान संभाली, अपने पिता और बड़े भाई का ऋण भी उतारा। इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में भी प्रसाद किस प्रकार स्वाध्याय जारी रख सके और किस प्रकार प्राचीन और आधुनिक ग्रंथों का गंभीर अध्ययन कर सके, यह सचमुच आश्चर्य और विद्वता का विषय है।

प्रसाद के व्यक्तित्व–निर्माण में प्रकृति का अपूर्व योगदान रहा है। ग्यारह वर्ष की आयु में अपनी माता के साथ पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, ब्रजमण्डल और अयोध्या आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा करके, जयशंकर प्रसाद ने इनके पीछे निहित गाथाओं के महत्त्व को समझा। अमरकंटक की पर्वमाला की यात्राओं में बहुत समय तक प्रकृति के भव्य परिवेश में रहने का अवसर मिला। चाँदनी रात में नर्मदा में नौका विहार करते हुए इनका हृदय कोमल कल्पनाओं से भर गया। इसी प्रकार भुवनेश्वर और जगन्नाथपुरी की यात्रा करते समय सागर की उत्ताल तरंगों का मर्तन देखा तो सागर की असीमता की भांति ही उनका ज्ञान क्षेत्र भी विस्तृत हो गया।

प्रसाद अपने पैतृक व्यवसाय के ज्ञाता थे परन्तु फिर भी उनकी रुचि मूलतः साहित्य सृजन और साहित्य चर्चा में ही थी, उनकी सबसे पहली रचना 'ग्राम' नामक कहानी थी जो 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। स्वभाव से प्रसाद बहुत संकोची, शांत और गंभीर थे जिस कारण वह किसी कवि–सम्मेलन, सभा में जाने से सदैव कतराते थे। वह अपने शत्रु के प्रति भी कटु शब्दों का प्रयोग न करके अपने शांत स्वभाव से परिचित करवाते हैं। अपने घर के आँगन में ही उन्होंने छोटी सी बगीची बना रखी थी जो कि उनके फूलों के प्रति मोह को दर्शाती है। प्रसाद की शतरंज खेलने, सात्विक भोजन, संगीत आदि में भी रुचि थी।

प्रसाद ने तीन विवाह किए। तीसरे विवाह से इन्हें 'रत्न शंकर' नामक पुत्र प्राप्त हुआ किन्तु उनका हृदय सदैव सांसरिक मोह–माया से विरक्त रह कर जीवन के शाश्वत मूल्यों की ओर उन्मुख रहा। 15 नवम्बर 1937 को प्रसाद इस संसार में नहीं रहे। उनकी मुत्यु के साथ ही हिन्दी–साहित्य का एक और अनमोल रत्न दुनिया से चला गया।

कृतित्व :

प्रसाद जी के भव्य और विराट् व्यक्तित्व की भांति उनका साहित्य भी विराट् है। उन्होंने पद्य और गद्य दोनों क्षेत्रों में अपनी कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा का परिचय दिया और अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएं हिन्दी साहित्य की झोली में अनमोल–रत्नों की तरह डालीं। कविता, नाटक कहानी, उपन्यास और निबंध सभी विधाओं में इन्होंने साहित्य सर्जन का कार्य किया। उनकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

काव्य रचनाए :चित्रधारा, प्रेम पथिक, करूणालय, महाराणा का महत्त्व, कानन कुसुम, झरना, आँसू, लहर, कामायनी।

नाट्य रचनाए : चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजाशत्रु, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिणी, सज्जन, कल्याणी परिणय, प्रायश्चित, विशाख, कामना, एक घूँट और जनमेज्य का नागयज्ञ।

कहानी संग्रह : छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल।

उपन्यास : कंकाल, तितली, इरावती (अधूरा)

निबन्ध : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध।

'आँसू' मूल्तः विरहप्रधान खंडकाव्य है, जिसमें विरही ह्रदय की वेदना को सहज अभिव्यक्ति मिली है। इसमें प्रसाद ने प्रेम–वेदना के अत्यंत मार्मिक रूप को दर्शाया है जिसमें सुख और दुःख है। यहां प्रसाद का व्यक्तिवाद अपने समग्र रूप में प्रकट हुआ है। 'आँसू' प्रसाद की छायावाद के सम्बंध में अत्यंत प्रौढ़ रचना है। 'लहर' मे ंप्रसाद के उन गीतों का संग्रह है, जो 'आँसू' और 'कामायनी' के बीच रचे गए थे। 'लहर' की कविताओं में प्रसाद के प्रौढ़ चिंतनशील व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इन कविताओं में भी शैली, सौंदर्य, प्रणय, प्रकृति, रहस्यवादिता आदि का निरूपण है किन्तु यह कविताएँ विचार और शैली दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ता लिए हुए हैं। 'कामायनी' को आधुनिक हिन्दी साहित्य का श्रेष्ठतम महाकाव्य माना जाता है। मनु, श्रद्धा और इड़ा की पौराणिक कथा को आधार बनाकर प्रसाद ने वर्तमान युग के मनुष्य के बौद्धिक और भावनात्मक विकास और वर्तमान जीवन के वैषम्य को प्रस्तुत किया है।

प्रसाद का साहित्यिक कृतित्व कविता के साथ–साथ नाट्य रूप, उपन्यासकार, कहानीकार तथा निबंधकार के रूप में भी साकार हुआ है। नाटकों में ऐतिहासिक रेखाओं में वर्तमान के काल्पनिक रंग भरते हुए भव्य और अविस्मरणीय कथानक प्रस्तुत किए गए हैं। उपन्यासों में जहां सामाजिक यथार्थ–बोध द्रष्टव्य होता है वहीं कहानियों में रोमांटिक भाव–बोध, इतिहासबोध व यथार्थ एवं कल्पना का मिश्रण भी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। निबंधों के अंतर्गत साहित्यिक निबंध है, जो साहित्य की विधाओं की मौलिक विवेचना दर्शाते हैं।

1.4.3 काव्यगत विशेषताएं :

प्रसाद एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। अतीत के प्रति उन्हें विशेष मोह था, परन्तु वर्तमान के प्रति भी वह जागरूक थे। उनकी काव्य कृतियों के आधार पर उनकी प्रमुख काव्यगत विशेषताओं का वर्णन सरलतापूर्वक निम्नलिखित है :

1. प्रेम भावना :– प्रेम–तत्व की व्यंजना प्रसाद–काव्य की प्रथम और प्रमुख प्रवृति है। 'प्रेमपथिक' में कवि की अनुभूति और विचारणा के अद्‌भुत मिश्रण के दर्शन होते हैं। प्रेम की भावना अपने आप में अनन्त है और उसकी चरम परिणति त्याग वृत्ति में है। 'प्रेम पथिक' में कवि तात्विक निष्कर्षों की स्थिति तक पहुँच गया लगता है। प्रेम की महत्ता स्पष्ट करते हुए प्रसाद कहते हैं :

"इस पथ का उद्देश्य नहीं, श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे रात नहीं।"

प्रसाद के काव्य में प्रेमानुभूति की दिशा मानव, प्रकृति और ईश्वर तक फैली हुई है। दूसरे शब्दों में कहें तो उनके द्वारा अभिव्यक्त प्रेम लौकिक होकर भी आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख है। वस्तुतः प्रेम को हिन्दी साहित्य में स्वस्थ और परिष्कृत रूप देने का श्रेय प्रसाद को ही है।

2. सौन्दर्य भावना :– प्रसाद मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। प्रसाद का मन नारी और पुरुष के सौन्दर्य में अधिक रमा है। उन्होंने नारी सौन्दर्य के बेजोड़ चित्र प्रस्तुत किए हैं। यहां प्रसाद की विशेषता यह रही है

कि उनके द्वारा प्रस्तुत यह चित्त रीतिकालीन कवियों की भांति सस्ती वासना एवं मांसलता की गंध से ओत–प्रोत नहीं है। प्रसाद ने 'आँसू' में नायिका के नख–शिख वर्णन की परम्परा को अपनाया है परन्तु उसमे नवीनता के साथ–साथ सर्वथा नये उपमानों को पहल दी हैः

"बांधा था विधु को किसने इन काली जंज़ीरों से।
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से।।"

नारी सौन्दर्य का आकर्षक चित्र प्रस्तुत करने में प्रसाद सिद्धहस्त हैं। उनका सौन्दर्य चित्रण स्थूल न होकर सूक्ष्म अधिक है।

3. शृंगारिकता :– जब हम प्रसाद द्वारा प्रतिपादित भावाभिव्यंजना पर विचार करते हैं तो हम देखते हैं कि उनके काव्य में न्यूनाधिक मात्रा में प्रायः सभी रसों का समावेश हुआ है परन्तु शृंगार रस का प्रयोग मुख्य रूप से हुआ है। इसमें भी विशेष बात यह है कि संयोग की अपेक्षा वियोग शृंगार की प्रधानता अधिक है। हालांकि प्रसाद संयोग के समय की परिस्थितियों का चित्रण करते समय सुन्दर भावानुभावों की योजना सफलतापूर्वक करते हैं परन्तु उनके काव्य में वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति अधिकता में है तथा विरह–शृंगार करूणा सिंचन से निखरा हुआ तथा जन–कल्याण की भावना से पुनीत हुआ प्रतीत होता है। प्रसाद के काव्य में ऐसे अनेक स्थल हैं जो पाठक से हृदय को छू लेते हैं। 'आँसू' नामक गीतिकाव्य कवि के हृदय की विरह तथा वेदना को ही अभिव्यक्ति देता है :

"इस करुणा कलित हृदय में / जब विकल रागिनी बजती है / क्यों हाहाकार स्वरों में / वेदना असीम गरजती?"

4. प्रकृति प्रेम :– इस बात से हम भली प्रकार परिचित हैं कि हिन्दी साहित्य में प्रकृति चित्रण को व्यापकता के धरातल पर प्रस्तुत करने का कार्य छायावादी कवियों ने ही किया है। प्रसाद ने प्रकृति के रम्य रूपों को घिसी–पिटी परम्परागत सीमाओं से परे ले जाकर उनमें मानवीय चेतना का आरोप कर उन्हें संवेदनशील बनाया है। कवि की भांति प्रकृति हँसती है, रोती है। प्रकृति के मानवीकरण का एक सुन्दर उदाहरण देखिए –

बीती विभावरी जाग री / अम्बर पन घट में डूबो रही / तारघर उषा नागरी।

उषा को स्त्री के रूप में वर्णित किए जाने से यहाँ प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। प्रसाद के काव्य में प्रकृति के सुन्दर रहस्यमय प्रेरक तथा महाविनाशकारी व भयंकर रूप भी दिखाई देते हैं।

5. रहस्य भावना :– रहस्य भावना छायावादी कवियों की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति मानी जा सकती है। इसी कारण कुछ विदान तो छायावाद को रहस्यवाद में सीमित मानते हैं। रहस्यवाद की पहली शर्त यही है कि कवि के मन में उस अपरिचित शक्ति अथवा विराट सत्ता के प्रति जिज्ञासा हो। स्वयं प्रसाद भी 'कामायनी' में उस अज्ञात सत्ता के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हुए बार–बार यही प्रश्न करते हैं कि वह अज्ञात सत्ता कौन सी है? प्रसाद के काव्य में रहस्य भावना का सुन्दर चित्रण दिखाई देता है। प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य को देखकर उस विराट सत्ता के प्रति जिज्ञासा पैदा होना उस प्रिय से परिचित होने की आतुरता उसके विरह में तड़प आदि के प्रसाद तर्क और बुद्धि का आश्रय छोड़ कर, सहज ज्ञान और कल्पना के सहारे उस विश्वात्मा को पहचानना चाहते हैं –

हे अनन्त रमणीय कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो? क्या हो? इसका तो भार–विचार न सह सकता

हे विराट! हे विश्वदेव! तुम कुछ तो ऐसा होता भान
मंद गम्भीर धीर संयुक्त यही कर रहा सागर गान।

6. जीवन–दर्शन (दार्शनिकता) :– प्रसाद के दार्शनिक विचारों पर शैव मत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। अपने काव्य में काव्य एवं दर्शन का विलक्षण समन्वय उन्होंने किया है। 'कामायानी' में उन्होंने जिस आनन्दवाद को प्रतिपादित किया है वह शैव दर्शन से प्रभावित है। जिस कारण वह समरसता–जन्य आनन्द को जीवन का परम लक्ष्य स्वीकार करते हैं। प्रसाद पर बौद्धों के दुःखवाद का प्रभाव भी दिखाई देता है।

7. राष्ट्रभावना :– अपनी नाट्य कला के माध्यम से भारतीय इतिहास के कंकाल में प्राणों का संचार करने वाले जयशंकर प्रसाद अपनी काव्य–कृत्तियों में भी इस राष्ट्र–भावना से अछूते नहीं रहे। उनकी काव्य–रचनाओं में यह राष्ट्र–प्रेम, संस्कृति प्रेम के रूप संकेतित हुआ है तदापि भारतीय संस्कृति एवं इतिहास के प्रति उनकी निष्ठा को कम करके नहीं आंका जा सकता। कवि ने अतीत को आधार बनाकर वर्तमान का चित्रण किया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक का निम्नलिखित गीत प्रसाद की राष्ट्रीय भावना की ओर ही संकेत करता है –

अरूण यह मधुमय देश हमारा / जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

8. मानवतावादी दृष्टिकोण :– अधिकतर छायावादी कवि राष्ट्र प्रेम से ऊपर उठकर संपूर्ण मानव समाज के कल्याण की बात करते हैं। प्रसाद भी इससे दो मत नहीं रखते बल्कि उनके काव्य में शाश्वत मानवीय भावों तथा मानवतावाद को अधिक बल मिला है। मानव के विकास की कहानी कहने हेतु जहाँ प्रसाद ने 'कामयनी' में मनु, श्रद्धा और इड़ा के प्रतीकों का सहारा लिया है वहीं इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान के समन्वय पर भी बल दिया है। समष्टि के लिए व्यक्ति का उत्सर्ग उनके काव्य का संदेश है। इस संदर्भ में श्रद्धा कहती हैं –

औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ
अपने अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।

प्रसाद यहाँ आकर स्वानुभूति तक सीमित नहीं रहे। अब वह संपूर्ण मानव समाज के कल्याण के लिए तत्पर दिखाई देते हैं।

9. भाषा शैली एवं कला पक्ष :– प्रसाद की भाषा साहित्यिक हिन्दी है और शैली लाक्षगिक है परन्तु अपने काव्य में प्रसाद ने मौलिक प्रयोगो से विविध शैलियों का प्रयोग किया है। काव्य रूपों की दृष्टि से उन्होंने प्रबंध शैली और मुक्तक शैली दोनों का सुन्दर प्रयोग किया है। मुक्तक काव्य के क्षेत्र में उनके काव्य में गीति काव्य शैली के दर्शन होते है। प्रसाद ने भाषा में अलंकारों को प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया है। जहाँ प्राचीन अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्पेक्षा का प्रयोग है वहीं अंग्रेजी साहित्य के दो नये अलंकारों मानवीकरण और विशेषण विपर्यय का भी सुन्दर प्रयोग है। प्रसाद की अलंकार योजना उच्च कोटि की है। छंद विधान के क्षेत्र में भी प्रसाद ने नवीन प्रयोग किए हैं। उनकी छन्द योजना स्वर और लय की मिठास से अनुप्राणित है। संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का सबसे परिपक्व रूप प्रसाद की रचनाओं में मिलता है।

1.4.4 सप्रसंग व्याख्या :

1. 'आँसू'

'जो घनीभूत पीड़ा थी....'

शब्दार्थ :– घनीभूत = सघन, गहन। दुर्दिन = बुरे दिन, पीड़ामय अवस्था के दिन।

प्रसंग :– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'दीपिका' में संकलित जयशंकर प्रसाद के गीतिकाव्य 'आँसू' से उद्धृत किया गया है। विरही–प्रेमी अपने प्रिय के वियोग में रो रहा है, और कवि इन आँसुओं की बह रही

अवरिल धारा के कारणों की खोज करता है।

व्याख्या :– यहां विरही–प्रेमी कहता है – प्रिय के वियोग की पीड़ा गहन होकर मेरे मन पर सुखद स्मृतियों के रूप में छा गई है और आज इस असमय में वही सघन पीड़ा अश्रुधारा बन कर मेरी आँखों से बहने लगी है। अर्थात् जिस प्रकार जलवाष्प गहन होकर बादलों का निर्माण कर वर्षा का कारण बनते हैं उसी प्रकार मेरे मन पर प्रिय की स्मृतियाँ सघन पीड़ा बनकर असमय आँसुओं का कारण बन गई हैं। अर्थात् कवि का मन वेदनाओं से व्याकुल है जिससे वेदनाए आँसू बनकर वह रही हैं।

विशेष :– प्रस्तुत काव्य के नामकरण पर प्रकाश पड़ता है। समूचे पद में मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव दिखाई देता है। वियोग–जन्य पीड़ा स्मृति का रूप धारण करती है तथा स्मृति आँसुओं का। शब्द–चयन भावानुकूल है परन्तु तत्सम शब्द प्रधान संस्कृतिष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया गया है। उपमा व श्लेष अलंकारों का प्रयोग है।

"मैं बल खाता..... तीखी थी तान हमारी।"

शब्दार्थ :– बलखाता = लचकता। मोहित = मुग्ध, आकृष्ट। बेसुध = बेहोश, चेतनाहीन होना। बलिहारी = न्योछावर होना। अन्तर = मन, हृदय। तीखी = तेज। तान = लय, स्वरध्वनि।

व्याख्या :– विरही–प्रेमी कहता है – मैं प्रिय के वियोग के कारण उत्पन्न पीड़ा के लिए भी खुश हूँ। मैं इसी बात से प्रसन्न था कि यह विरह जन्य पीड़ा अन्ततः उसी प्रिय के कारण जन्मी है जिसके साथ मैंने मिलन के आनन्दमय क्षण बिताये थे। मैं अपनी व्यथा पर मोहित था। मैं अपनी सुध–बुध तक को बैठा था। मेरे हृदय रूपी वीणा के तार खींचे हुए थे अर्थात् मेरा मन शांति नहीं था उसमें हलचल थी। कदाचित् इसी कारण मेरी उस वीणा के स्वरों में भी तीखापन था।

विशेष : अतीत की मधुर स्मृतियों में खोया कवि इन स्मृतियों को ही सब कुछ मानता दिखाई देता है। भाषा भावानुकूल है,, शृंगार रस के वियोग पक्ष का चित्रण है। अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग भी है। कवि ने विरही–प्रेमी के व्यवहार के अद्‌भुत पक्ष का चित्रण किया है।

2. 'प्रेम–पथिक'

'सन्ध्या की ...... नींद सुला देगा।'

शब्दार्थ :– सन्धया = शाम, सायंकाल। रंजित = भरा होना। तम = अन्धेरा।

प्रसंग :– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'दीपिका' में संकलित जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित 'प्रेम पथिक' से उद्धृत किया गया हैं कवि प्रणय भावना को दार्शनिकता के कलेवर में लपेट कर प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

व्याख्या :– कवि पथिक के माध्यम से कहता है कि सन्ध्या की, शीतल होती किरणें जिसको छू लेती हैं और नई चमेली को मुद से भर देती है, कौन जानता है कि कुछ ही देर में वह अंधकार में जाकर छिप जाएगी, या फिर कोमल मधुकर उसको मीठी नींद सुला देगा। अर्थात् उस विराट् सत्ता की लीला किसने जानी है। यहां प्रकृति के सम्पूर्ण यौवन पर विचार करने के पश्चात् पथिक इस कौन और क्यों की परिधि में खड़ा आश्चर्य से भरा हुआ है। उसके अनुसार भविष्य जीवन का धुंधला पट, कौन उठा सकता है। पथिक अपने प्रणय–से विरह में आकर ही उस अज्ञात सत्ता की ओर आकृष्ट होता है। यहां पर कवि द्वारा प्रेम–दर्शन की स्थापना की गई है।

विशेष :– प्रसाद का प्रेम उदात्त अवस्था में पहुँच गया है। प्राकृतिक दृश्य के उद्‌घाटन में मानवीय मनोवृत्तियों का चित्रण किया गया है।

3. 'आशा'

'उषा सुनहले तीर .... जल में अन्तर्निहित हुई।'

शब्दार्थ :– सुनहरे तीर = सुनहरे रंग के तीरों जैसी चमकदार किरणें। जय लक्ष्मी = विजय श्री। उदित हुई = प्रकट हुई। काल–रात्रि = प्रलय की रात। अन्तर्निहित = छिपना, लुप्त होना।

प्रसंग :– प्रस्तुत पंक्तियाँ पाठ्य क्रम में निर्धारित पुस्तक 'दीपिका' में संकलित जयशंकर प्रसाद रचित 'आशा' से उद्धृत किया गया है। यह अंश उनके महाकाव्य 'कामायनी' का एक महत्त्वपूर्ण सर्ग है।

व्याख्या :– कवि प्रलय के पश्चात् की स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि सुनहरे रंग के तीरों जैसी चमकदार किरणों को बरसाती ऊषा इस प्रकार प्रकट हुई मानो विजयश्री स्वयं प्रकट हो गयी हो। यह दृश्य प्रलय प्रवाह की समाप्ति दर्शाता है। दूसरी ओर ऊषा के प्रकट होते ही प्रलय की भयानक रात भी जल में लुप्त हो गयी।

विशेष :– यहां ऊषा और प्रलय की रात के संघर्ष का चित्रण है। उपमा, रूपकातिशयोक्ति तथा हेतुत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

'देखा मनु ने .... हिम–शीतल–जड़ता–सा श्रांत।'

शब्दार्थ :– अतिरंजित = अत्यधिक रमणीय। विजन = निर्जन, सुनसान। नव एकान्त = नयी–नीरवता। हिम शीतल = बर्फ के समान ठण्डा। श्रान्त = थका हुआ।

व्याख्या :– कवि मनु के माध्यम से संसार का वह सुनसान एकान्त दिखाता है जिसे मनु भय–मिश्रत दृष्टि से देखता है। मनु को यह एकान्त ऐसे प्रतीत होता है मानों बर्फ के समान ठण्डा, चेतनाहीन कोलाहल थककर चुपचाप सो गया हो। भाव यह कि चारों ओर गहन सुनसान छायी हुई थी।

विशेष :– हेतुत्प्रेक्षा, उपमा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

'किसका था भ्रू–भंग .... फिर भी कितने निबल रहे !'

शब्दार्थ :– भ्रू–भंग = कटाक्ष, क्रोध प्रकट करना। विकल = व्याकुल, दुःखी।

व्याख्या :– मनु उस विराट् शक्ति के प्रति आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि वह विराट् शक्ति कौन–सी है जिसके जरा से क्रोध करने पर समस्त सृष्टि में विनाशकारी प्रलय आ गया और सभी प्राणी व्याकुलता से भर उठे थे। इसके साथ ही प्रकृति की सभी शक्तियों के प्रतीक जल, वायु, सूर्य आदि उस विराट् शक्ति के सन्मुख कितने विवश और असहाय हो उठे थे भाव यह कि उस शक्ति के सामने उनकी एक भी न चली।

विशेष :– उपमा तथा विरोधाभास अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

'मैं हूँ, यह वरदार .... शाश्वत नभ के गानों में'

शब्दार्थ :– सदृश = भांति। शाश्वत = सदैव, अमर। नभ के गान = आकाश में गूँजते शब्दों में अर्थात् सृष्टि के इतिहास में।

व्याख्या :– जीवन के प्रति आशान्वित मनु अपनी इस भावना के प्रति आश्चर्य से भर उठते हैं और कहते हैं कि इस संसार में मेरा भी कोई अस्तित्व है, यह भावना मेरे मन में किसी वरदान की भांति क्यों बार–बार गूँज रही है? मैं अब यह क्यों सोचने लगा हूँ कि इस आकाश में मेरा नाम भी सदैव गूंजता रहे? अर्थात् सृष्टि के इतिहास में मेरा नाम भी अमर हो जाए?

विशेष :– उपमा तथा रूपक अलंकार का प्रयोग। मनु के माध्यम से जिजीविषा की अभिव्यक्ति व महत्त्वाकांक्षा का दृश्य दिखाया गया है।

'उमड़ रही जिसके .... बिखराती जीवन–अनुभूति।'

शब्दार्थ :– चरणों में = घाटी अथवा तलहटी में। नीरवता = सुनसान। विमल विभूति = पवित्र ऐश्वर्य। जीवन = जल। अनुभूति = ज्ञान।

व्याख्या :– हिमालय के प्रकृति सौन्दर्य को देख भाव–विभोर हुए मनु कहते हैं कि उस हिमालय की तलहटी में अत्यंत सुन्दर, सुनसान और पवित्र वातावरण था परन्तु उस क्षेत्र में जो झरने झर रहे थे उनकी धाराएँ जीवन की अनुभूति अर्थात् जल को विखेर रही थी।

विशेष :– यहां श्लेष और उत्प्रेक्षा अलंकार है। मनु के मन प्रकृति प्रेम सांकेतिक रूप से जीवित रहने की इच्छा को प्रकट करता है।

'दुख का गहन पाठ .... मग्न अकेले रहते थे।'

शब्दार्थ :– दुख का गहन पाठ = अनके प्रकार के कष्ट सहन करना। नीरवता = सुनसानी। मग्न = लीन, डुबे हुए।

व्याख्या :– कवि कहता है कि मनु चूंकि अपने प्रलय–काल में अनेक कष्ट को सहन कर चुके थे इसलिए अब वह सहानुभूति के अर्थ को भली–भांति समझने लगे थे। समस्त क्षेत्र में निर्धनता और सुनसान थी, ऐसे गहन परिवेश में वह अकेले में अपने विचारों में डूबे रहते थे।

विशेष :– श्लेष अलंकार का प्रयोग है। असह्य कष्टों से साक्षात्कार कर चुके मनु के मन में अन्य प्राणियों के प्रति सहानुभूति का भाव उपजा दिखाया गया है जो कि मनोवैज्ञानिक रूप में भी सार्थक है।

1.4.5 लघु प्रश्न–उत्तर

1. जयशंकर प्रसाद की कोई चार काव्य कृत्तियों के नाम लिखें।

उत्तर : आँसू, लहर, झरना, कामायनी।

2. जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्त्तक क्यों कहा जाता है।

उत्तर : प्रसाद को छायावाद को प्रवर्त्तक इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन्होंने सर्वप्रथम द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध कविता के भाव पक्ष पर बल दिया। कविता को प्रकृति के साथ जोड़ा, प्रकृति का मानवीकरण किया।

3. कामायनी का परिचय संक्षेप में दीजिए।

उत्तर : कामायनी एक प्रबन्ध काव्य है इसकी रचना 1936 ई. में हुई। कवि ने इसमें आदि मानव मनु और श्रद्धा के द्वारा आधुनिक मनुष्य के प्रश्नों पर विचार किया है।

4. 'आँसू' एक विरह काव्य है – स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : आँसू में कवि अपनी प्रेमिका के साथ बिताए हुए क्षणों को याद करता, उसकी याद में तड़फता है इसलिए यह एक विरह काव्य है।

5. मानवीकरण किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रकृति को जब मनुष्य की तरह कार्य करते हुए दिखाया जाता है उसे मानवीकरण करते हैं।

1.4.6 सहायक पुस्तकें

1. जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला : डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल
2. प्रसाद की काव्य कला : प्रेम शंकर

3. प्रसाद की कविताएं : सुधाकर पाण्डेय
4. आँसू और अन्य कृतियाँ : डॉ. विनय मोहन शर्मा

1.4.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. प्रसाद ने आधुनिक काव्य को नवीन अभिव्यक्ति दी स्पष्ट करें।
2. प्रसाद की कामायनी एक सर्वश्रेष्ठ काव्य है – विचार करें।
3. प्रसाद की काव्यगत विशेषताएं लिखें।
4. प्रसाद का प्रेम लौकिक है या अलौकिक – सिद्ध कीजिए।
5. 'आशा' सर्ग के उद्देश्य को स्पष्ट करें।

पाठ संख्या : 1.5

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला

इकाई की रूपरेखा

1.5.0 उद्देश्य
1.5.1 प्रस्तावना
1.5.2 निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व
1.5.3 काव्यगत विशेषताएँ
1.5.4 सप्रसंग व्याख्या
1.5.5 लघु प्रश्न–उत्तर
1.5.6 सहायक पुस्तकें
1.5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ में छायावादी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप

– निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
– निराला की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
– काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

1.5.1 प्रस्तावना

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला को हिन्दी साहित्य में महाकवि, महाप्राण और युगपुरुष के रूप में जाना जाता है। वे एक ऐसे विशिष्ट साहित्यकार हैं जिनके जीवन और साहित्य में परस्पर विरोधी विचारधाराएं देखने को मिलती है। इन्होंने अपने साहित्य में रूढ़िवादी विचारों का निषेध किया और नये युगान्तकारी विचारों को प्रस्तुत किया। जिसके कारण इनका हिन्दी जगत् में कड़ा विरोध हुआ। डॉ. राम विलास शर्मा के अनुसार निराला विद्रोह और परिवर्तन का कवि है। वह जीवन संघर्ष में कूदने के लिए आह्वान करने वाला कवि है। निराला ने ही सर्वप्रथम कविता को छन्द के बंधन से मुक्ति दिलाते हुए 'मुक्त छन्द' में कविता रचना की। 'जूही की कली' (1916) इनकी पहली 'छन्द मुक्त' कविता है जिसके कारण ये काफी चर्चित हुए।

1.5.2 निराला : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व :

क्रांतिकारी और विद्रोही कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जन्म बसंत पंचमी के दिन सन् 1886 में बंगाल प्रांत

के में मेदिनीपुर ज़िले में बसे महिषादल राज्य में हुआ था। इनके पिता रामसहाय त्रिपाठी एक अत्यंत कर्म और अनुशासन प्रिय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। जो अपने पुत्र के साथ बड़ा कठोर व्यवहार करते थे। निराला जी का पहला नाम 'सूर्य कुमार' था। जिसे स्वयं ही निराला जी ने 'सूर्यकान्त' में बदल दिया। अभी यह तीन वर्ष के ही थे कि इनकी माता जी का देहान्त हो गया। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा बंगला में ही हुई। बैंसवाड़ी भी इन्होंने सीखी थी। निराला का बाल्यकाल 'गढ़ाकोला' और 'महिषादल' में बीता। इसलिए इनके व्यक्तित्व में बैसवाड़ा की दृढ़ता, पौरुष, अक्खड़ता और स्वाभिमान तथा बंगला की तरलता, सरलता और सरसता का अदभुत मिश्रण मिलता। पिता के कठोर व्यवहार ने इन्हें अन्तर्मुखी और हठी के साथ–साथ लापरवाह भी बना दिया। इनका विवाह 1911 ई. में हुआ। इनकी पत्नी हिन्दी भाषा और साहित्य से अनुराग रखती थी। 21 वर्ष की अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते इन्होंने अपनी पत्नी, पिता और चाचा को खो दिया। इनकी पूत्री 'सरोज' के देहान्त ने तो इनको झकझोर कर रख दिया।

रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रविन्द्रनाथ जैसे महापुरुषों के प्रभाव से उनमें आध्यात्मिक आस्था, सेवा भावना, सांस्कृतिक सजगता, राष्ट्रीय भावना और विश्व बंधुत्व की भावना दृढ़ हुई। रामकृष्ण परमहंस इनके आराध्य देव, विवेकानंद आदर्श पुरुष और रविन्द्रनाथ टैगोर प्रेरणा पुरुष थे। इसके अतिरिक्त निराला में कबीर का फक्कड़पन और तुलसी की तरह भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग था।

निराला सहृदय तथा उदार व्यक्ति थे उनमें अपने मित्रों के प्रति अगाध स्नेह था। अपरिचित व्यक्ति भी उनके सानिध्य में आकर घनिष्ठ बन जाता था। उनके व्यक्तित्व की एक ओर विशेषता थी दृढ़ता। जो कह दिया उसी पर अडिग रहना उनके स्वभाव के अनुकूल था। उनमें वे सभी गुण विद्यमान थे जो युग द्रष्टा साहित्यकार में होने चाहिए। उन्होंने अपने जीवन की सभी चुनौतियों को झेलते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। अपने व्यक्तित्व से निराला पथ दिखाने वाले और निराली वाणी प्रदान करने वाले इस कवि का निधन सन् 1961 में हुआ।

निराला के असाधारण व्यक्तित्व की तरह ही इनका कृतित्व भी उदात्त और गरिमाशाली है। उनकी काव्य साधना अत्यंत व्यापक तथा विशाल है। कवि रूप में निराला बराबर गतिशील रहे हैं। इन्होंने छायावादी, रहस्यवादी और जीवन के अंतिम वर्षों में विद्रोही और प्रगतिवादी कविताएं भी लिखी। सन् 1923 में 'मतवाला' पत्रिका के सम्पादक बने और अपना नाम निराला रख लिया। इनकी काव्य–प्रतिभा को प्रकाश में लेकर आने का श्रेय 'मतवाला' को ही जाता है। इनकी मुख्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

काव्य ग्रंथ : अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अणिमा, नये पत्ते, बेला, अर्चना, आराधना, गीत–गुंज, सांध्य काकली।

उपन्यास : अप्सरा, अलका, निरुपमा, प्रभावती, उच्छृंखल, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली आदि।

कहानी : लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीवी आदि।

रेखा चित्र : कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरिहा आदि।

पत्रिकाएं : 'समन्वय' और 'मतवाला' का सम्पादन।

'कुकुरमुत्ता' इनकी प्रसिद्ध कविता है जिसमें पूंजीपतियों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। 'कुकुरमुत्ता' शोषित वर्ग का प्रतीक जो बिना किसी सेवा–संभाल के अपने आप ही पैदा हो जाता है। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' और 'सरोज स्मृति' इनकी प्रौढ़ कृतियाँ है। पहली दो कविताओं में तुलसी और राम के जीवन का वर्णन है। 'सरोज–स्मृति' इनकी पुत्री की मृत्यु पर लिखा गया एक शोकगीत है। इसमें वात्सल्य और करुणा का

उद्रेक हुआ है। 'जूही की कली', 'संध्या सुन्दरी', 'जागो फिर एक बार' आदि कविताएं मुक्त छन्द में मिलती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि युग की समस्त विशेषताएं इनके काव्य में प्रतिबिम्बित है।

1.5.3 काव्यगत विशेषताएं

निराला की काव्यगत विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

1. वैयक्तिकता : निराला के काव्य में 'स्व' की अभिव्यक्ति प्रारम्भिक रचनाओं में होती है। कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियां : हर्ष–शोक, सुख–दुःख को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। विषय वस्तु की खोज वह अपने मन के अन्तर ही करता है। जैसे :

"मैंने, मैं शैली अपनाई
देख एक दुःखी निज भाई
दुःख की छाया पड़ी हृदय पर
झट उमड़ वेदना आई।"

2. प्रेम तथा श्रृंगार निरुपण : निराला जी के काव्य में प्रेम तत्व का भव्य चित्रण है। 'जूही की कली', 'यमुना के प्रति', 'तरंगों के प्रति' आदि रचनाएं इस बात का स्पष्ट उदाहरण हैं। इन्होंने उन सभी श्रृंगारिक भावनाओं का चित्रण किया जो नर–नारी के जीवन में उत्पन्न होती हैं। इनका प्रेम शारीरिक और मांसल नहीं है। प्रेम को अधिक व्यापक, सूक्ष्म और भावमय बनाया है। 'जूही की कली' का उदाहरण देखिए :

"निर्दय उस नायक ने / निपट निठुराई की / कि झोंको की झाड़ियों से / सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली / मसल दिए गोर कपोल–गोल।"

3. प्रकृति चित्रण : कवि निराला ने प्रकृति के विराट चित्र खींचे हैं। भाव और कला दोनों क्षेत्रों में वह प्रकृति से नाना प्रकार के रंग ग्रहण करता है। निराला के काव्य में प्रकृति कहीं आत्मा–परमात्मा के संबंधों को व्याख्यायित करती है तो कहीं सुन्दर और भयंकर रूप में चित्रित हुई है। मानवीकरण का उदाहरण देखिएः

"दिवसावसान का समय/मेघमय आसमान से उत्तर रही/वह संध्या सुन्दरी परी सी/ध
ीरे–धीरे–धीरे।"

4. रहस्यवादी भावना : निराला छायावादी कवि ही नहीं रहस्यवादी कवि भी हैं। निराला के रहस्यवाद पर रवीन्द्र की 'गीतांजली' और रामकृष्ण परमहंस के अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट है। 'गीतिका' में आत्मा–परमात्मा का मिलन और विरह का सरस चित्रण है। कवि ब्रह्म के साथ अपना संबंध इस प्रकार स्पष्ट करता है :

"तुम तुंग हिमालय श्रृंग / मैं चंचल गति सुर सरिता।"

5. प्रगतिवादी भावना : शोषितों की दीन–हीन दशा को देखकर कवि का मन विद्रोह कर उठता है। दुःखी मानव के प्रति उनके मन में करुणा और सहानुभूति है। 'भिक्षुक', 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर' और 'कुकुरमुत्ता' रचना में कवि की प्रगतिवादी विचारधारा का निरुपण हुआ है। 'भिक्षुक' की दयनीय स्थिति का वर्णन कवि इस प्रकार करता है :

"वह आता / दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता / पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक, चल रहा लकुटिया टेक।"

'कुकुरमुत्ता' में पूंजीपतियों के प्रतीक 'गुलाब' के माध्यम से कवि कहता हैः

> "अबे सुन वे गुलाब / भूल मत गर पाई, खुशबू रंगों आब / खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट / डाल पर इतरा रहा, कैपिटलिस्ट।"

6. राष्ट्रीय जागरण : पराधीन भारतीय समाज में जागृति पैदा करने के लिए निराला ने अतीत गौरव का गान किया है। 'जागो फिर एक बार' कविता में यही स्वर मुखरित हुए हैं। गुरु गोविन्द सिंह और शिवा जी की वीरता का स्मरण कराकर शेर की मांद में घुसे स्यार को भगाने का उपदेश दिया गया है :

> "शेर की मांद में आया है आज स्यार / जागो फिर एक बार"

7. वेदना और निराशा : निराला का समस्त जीवन कष्टों से भरा हुआ था। उन्होंने बहुत सारी समस्याओं का सामना किया था। उन्होंने अपने प्रियजनों के वियोग को सहन किया था। अकेलेपन से निराश होकर कहते हैं :

> "मैं अकेला / देखता हूँ, आ रही / मेरे दिवस की सांध्य वेला।"

8. करुणा का स्वर : छायावादी कवियों के काव्य में करुणा की अभिव्यक्ति भी प्रमुख रूप में दृष्टिगोचर होती है। निराला के काव्य में भी करुणा का स्वर अत्यंत प्रभावी ढंग से मुखरित हुआ है। इनकी 'भिक्षुक', 'दीन', 'विधवा', और 'तोड़ती पत्थर' इसके सुन्दर उदाहरण हैं। भारतीय समाज में 'विधवा' की दयनीय स्थिति का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

> "वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा–सी / वह दीप शिखा–सी शान्त, भाव में लीन/वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति–रेखा सी / वह टूटे तरु की छूटी लता–सी दीन / दलित भारत की ही विधवा है।"

9. नारी चेतना : निराला क्रांतिकारी कवि थे। नारी के प्रति उनका दृष्टि कोण अत्यंत स्वच्छंद है। उन्होंने नारी के शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसके आन्तरिक सौन्दर्य को वर्णित किया है। उनकी नारी पत्थर तोड़ने वाली भी हो सकती है, विधवा हो सकती है या 'राम की शक्ति' पूजा की 'सीता' भी हो सकती है।

10. रस निरुपण : निराला के काव्य में सभी रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। उन्होंने काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण और रौद्र और शांत रस चित्रण को अधिक महत्व दिया है। श्रृंगार इसका उदाहरण देखिए :

> "वह घाट वही जिस पर हंसकर / वह कभी नहाती थी धंस कर / आँखे रह जाती थी फंसकर / कंपते थे दोनों पांव–बन्धु / बाँधों न नाव इस ठांव, बन्धु"

11. भाषा शैली, छंद अलंकार : निराला की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। संस्कृत शब्दों के प्रयोग के कारण भाषा क्लिष्ट हो गई है, प्रगतिवादी रचनाओं की भाषा सरल है। भाषा में संगीतात्मकता और मधुरता है। निराला ने अधिकांश काव्य मुक्तक शैली में लिखा है। प्रबन्ध शैली में तीन रचनाएं – 'राम की शक्ति पूजा', 'तुलसीदास' तथा 'सरोज स्मृति'।

निराला ने सर्वप्रथम मुक्त छन्द में रचना की। छंदों के क्षेत्रों में उन्होंने किसी भी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं किया। इनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग बड़े सजीव और स्वाभाविक ढंग से हुआ है। अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अलंकार इनके काव्य में मिल जाते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि 'निराला' हिन्दी काव्य आकाश के चमकते हुए सितारे

हैं। उनका काव्य हिन्दी की अमूल्य निधि है। निराला भाव, भाषा, शैली, छन्द सभी दृष्टियों से हिन्दी साहित्य में निराले ही थे।

1.5.4 सप्रसंग व्याख्या

1. जूही की कली

विजन–वन–वल्लरी .... कहते हैं मलयानिल

शब्दार्थ : विजन = एकान्त। वन वल्लरी = वन की लता। अमल = निर्मल। तनु–तरुणी = पतली कमर वाली युवती। दृग = आंख। पत्रांक = पत्तों की गोद।

प्रसंग : ये पंक्तियाँ श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध कविता जूही की कली की है, जोकि हमारी पाठ्य–पुस्तक दीपिका से उद्धृत हैं। इस पाठ्य–पुस्तक के संपादक डॉ. हेमराज निर्मम हैं। यह निराला की बहुचर्चित कविता है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों के माध्यम से श्रृंगारिक क्रिया–कलापों की अभिव्यक्ति हुई है।

व्याख्या : जूही की कली की तुलना एक मुग्धा नायिका से करते हुए निराला जी कहते हैं कि किसी निर्जन (सुनसान) वन में उपजी लता पत्तों की गोदी में प्रेम की मधुर कल्पनाओं में डूबी हुई किसी सौंदर्य–युक्त कोमल शरीर वाली युवती के समान, पूर्ण विकसित जूही की कली अपने नेत्रों को बन्द किए अपने अलसाये शरीर से खिलने की तैयारी में चुपचाप सो रही थी। वह बसन्त ऋतु की एक मादक रात्रि थी। उस कली का प्रेमी मलय पर्वत से आने वाला पवन उसके विरह– वियोग से दुखी हो कर अभी किसी प्रान्त में ही था और जूही की कली अभी विकासवास्था में थी। कवि ने यहां जूही की कली की तुलना विरह–विदग्ध नायिका से की है। जिस प्रकार अपने प्रिय के वियोग में नायिका स्मृतियों में सोई खोई बेसुध–सी शय्या पर पडी रहती है, उसी प्रकार जूही की कली भी अपने प्रेमी मलायानिल के वियोग में पत्तों पर सोई रहती है।

विशेष : 1. कुछ आलोचकों ने जूही की कली और मलयानिल के मिलन में आत्मा और परमात्मा के मिलन के आध्यात्मिक संकेत भी ढूँढे है। लेकिन यह दुराव या छिपाव कल्पना ही है।

2. संवेदना और शिल्प की दृष्टि से यह कविता एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी गई है। इसमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। यहां अन्योक्ति और अनुप्रास की छटा भी द्रष्टव्य है।

3. इस पद्यांश में बिम्बात्मकता की कलात्मक क्षमता भी दर्शनीय है।

"आयी याद बिछुड़न से .... कली–खिली साथ।"

शब्दार्थ : कान्ता = प्रिया। कम्पित कमनीय गांत = काँपता हुआ सुन्दर शरीर। सरित = नदी। गहन = घन्न। गिरि = पर्वत। कानन = वन। लता–पुंजों = बेलों के समूहों। केलि = क्रीड़ा।

व्याख्या : विरह–विदग्ध नायक रूपी मलया पर्वत से आने वाले पवन को जो परदेश में था, अपनी प्रिया 'जूही की कली' का स्मरण हो आया। उसकी स्मृतियों में मिलन के सुख–क्षण कौंध गए। उसे चाँदनी से धुली हुई धवल (श्वेत) आधी रात याद आई। उसे याद आई वे मीठी–मीठी बातें, उसे याद आई, वे स्मृतियाँ जब वह अपनी प्रेयसी कली के काँपते सुन्दर शरीर से बिछुड़ा था। मिलन की 'इन स्मृतियों के कौंधते ही वह मलय–पवन वन–उपवन, नदी–तालाब, घने जंगल, पर्वत, लताओं के झुरमुटों तथा कुंजों को पार करता हुआ अपनी प्रेयसी जूही की कली के पास आ गया। प्रेयसी कली के साथ पवन ने प्रेम–क्रीड़ायें की और कली खिल उठी। कवि का भावार्थ यह है कि जिस प्रकार परेदशी प्रियतम अपनी प्रियतमा की याद से तड़प उठता है और फिर अपने घर लौट कर अपनी प्रियतमा को अपनी केलियों (प्रेमपूर्ण क्रीड़ाओं) से प्रसन्न कर देता है और

उसका चेहरा खिल उठता है, ठीक उसी प्रकार मलयानिल ने आ कर अपनी प्रेयसी 'जूही कर कली' को खिला दिया।

विशेष : 1. प्रस्तुत पंक्तियों में प्रकृति का मानवीकरण करके प्रातःकाल का बड़ा ही बिम्बात्मक रूप चित्रित किया गया।

2. पुनरुक्ति, अनुप्रास तथा सहोक्ति अलंकारों के प्रयोग से काव्य–सौंदर्य में विशेष वृद्धि हुई है। 3. प्रकृति का बड़ा ही उद्दीपक एवं मनोरम दृश्य अंकित किया गया है, जो कि छायावाद की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

2. भिक्षुक

वह आता .... पछताता पथ पर आता।

शब्दार्थ : लकुटिया = लाठी। पथ = मार्ग, रास्ता।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध कविता भिक्षुक की आरम्भिक पंक्तियाँ है, जोकि हमारी पाठ्य–पुस्तक दीपिका से उद्धृत की गई है। इस पाठ्य–पुस्तक के संपादक डॉ. हेमराज निर्मम हैं। यह कविता कवि के कविता–संग्रह परिमल में संकलित है। यह एक प्रगतिवादी कविता है। इस कविता में कवि ने समाज में फैली हुई आर्थिक असमानता पर प्रकाश डाला है। मानवतावादी कवि होने के कारण निराला जी के मन में मनुष्य के प्रति अथाह प्रेम और शोषितों के प्रति अपार सहानुभूति है। इस कविता में कवि ने एक भिखारी के माध्यम से लाचार–व्यक्तियों के प्रति अपनी सहानुभूति को व्यक्त किया है। कवि ने एक भिखारी के कष्टपूर्ण जीवन को बहुत यथार्थ रूप से प्रकट किया है।

व्याख्या : कविवर निराला जी भिखारी की दीन–हीन स्थिति का मार्मिक वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस भिखारी की शोचनीय स्थिति को देख कर किसी भी दर्शक व्यक्ति के मन के दो टुकड़े हो जाते हैं। कवि के कहने का अर्थ यह है कि मन हृदयद्रावक करुणा से भर जाता है। वह भिक्षुक मानों अपनी स्थिति पर पछताता हुआ–सा आ रहा है। भूख और कमज़ोरी के कारण उसका पेट और पीठ दोनों मिल कर एकाकार हो गए हैं। वह लाठी का सहारा लिए हुए चला जा रहा है। वह मुट्ठी जितने दान प्राप्त करने के लिए अपनी पुरानी, फटी हुई झोली का मुँह फैलाए हुए है। उसे देख कर कवि का मन करुणा से भर जाता है। वह भिखारी अपनी दशा पर मानो पछतावा करता हुआ–सा नज़र आ रहा है।

विशेष : 1. यहां कवि ने एक दीन–हीन भिखारी का वास्तविक चित्रण किया है। 2. करूण रस का प्रयोग हुआ है। 3. भाषा अभिधापरक है। 4. 'भर भूख', 'फटी फैलाता', 'पछताता पथ', 'पेट पीठ' में छेकानुप्रास नामक शब्दालंकार है। 5. भाषा में प्रभावशीलता का गुण सब कहीं है। 6. भाषा सरल, स्पष्ट, कोमलकान्त पदावली–युक्त चित्रात्मक, बिम्बात्मक और मुहावरेदार है। 7. भाषा भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप सफल रही है।

3. विधवा

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा–सी ....

उस अनन्त पथ से करूणा की धारा।

शब्दार्थ : इष्टदेव = भगवान्। दीपशिखा = दीपक की लौ। क्रूर = निर्दय। काल = समय। ताण्डव = शिव का भयानक रसपूर्ण नृत्य। दीन = बेचारी। दलित = गिरी हुई, दीन। षड् = छह। कानन = वन। निःशब्द = चुपचाप, शोर के बिना। संचार = चलना–फिरना। स्वच्छन्द = मुक्त, स्वतन्त्र, आज़ाद। विहार = घूमना,

क्रीड़ा करना। सुहाग = सौभग्य। बिंबित = प्रतिबिंबित, झलका हुआ। अबल = निर्बल। अनन्त पथ = आकाश, अन्तरिक्ष।

प्रसंग : पंक्तियां श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की प्रसिद्ध कविता विधवा की आरम्भिक पंक्तियां हैं, जोकि हमारी पाठ्य–पुस्तक दीपिका से उद्धृत हैं। इस पाठ्य–पुस्तक के संपादक डॉ. हेमराज निर्मम है। इन पंक्तियों में भारत में क्रूर काल और दुर्भाग्य से 'विधवा' हुई एक भारतीय नारी के जीवन के दुःखों, पीड़ाओं आदि का अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली वर्णन किया गया है, जिससे यह कविता हिन्दी काव्य के इतिहास में अमर हो गई है।

व्याख्या : निराला जी एक भारतीय विधवा नारी को ईश्वर के मन्दिर की पूजा–सी पवित्र और दीपक की लौ–सी शान्त स्वभाव वाली और दिवंगत पति के स्मरण जैसे भाव में सदैव लीन रहने वाली घोषित करते हैं। उसे देख कर क्रूर काल के 'ताण्डव' नृत्य अर्थात् मारक प्रहारों की याद ताज़ा हो जाया करती है। जिस प्रकार किसी खंडित वृक्ष से छूट कर कोई लता (बेल) लोगों द्वारा लगातार पद–दलित होती रहती है, ठीक उसी प्रकार की दुरावस्था में अपने पति से वियुक्त हुई एक भारतीय विधवा की भी होती है।

कवि आगे कहता है कि सामाजिक रीति–नीतियों और निषेधों के कारण छहों ऋतुओं में दैनिक श्रृंगार–प्रसाधन करना और पुष्पित वन में निःशब्द (चुपचाप) घूमना, यहां तक कि कल्पना तक में उन्युक्त विचरण करना (घूमना) भी मानों उसकी एक वेदनापूर्ण भूली हुई कहानी–सा बन कर रह जाता है। वास्तव में, हिन्दू समाज के कठोर नियमों के चलते भारत में एक विधवा स्त्री यह सब आनन्द–भोग नहीं कर सकती है, इसीलिए उस बेचारी के लिए तो वह सम्पूर्ण 'अतीत' एक सपना–सा ही बन कर रह जाता है या फिर उसे मधुर सौभाग्य का ऐसा 'दर्पण' कहा जा सकता है, जिसमें उसने केवल एक बार अपने उस जीवन के 'सर्वश्रेष्ठ धन' रूपी पति के दर्शन किये थे। आज उस अबला के निर्बल हाथों का एक मात्र सहारा और जीवन का प्रिय लक्ष्य सरीखा वही पति मानो किसी ध्रुवतारे–सा स्थित और शोभित होकर दूर के उस अनन्त प्रदेश से ही उसके नयनों से करुणापूर्ण स्मृति के रूप में अश्रु बहाए चला जा रहा है। दूसरे शब्दों में, अपने दिवंगत (स्वर्गीय) पति की सुमधुर स्मृति में एक विधवा नारी दिन–रात निरन्तर रोती ही रहती है।

काव्य–सौष्ठव : 1. 'पूजा–सी', 'दीपशिखा–सी', 'स्मृति–रेखा–सी' वाक्यांशों में उपमाएँ हैं। यहां पहली और तीसरी उपमा में अमूर्त्त उपमानों से 'मूर्त्त' (विधवा नारी) की उपमा दी गई है, दूसरी–चौथी उपमाओं में मूर्त्त उपमानों से। 2. 'काल–ताण्डव' में मानवीकरण अलंकार है। 3. 'वह टूटे तरु की छुटी लता–सी दीन–दलित भारत की ही विधवा है। पंक्तियों में पूर्णोपमा अलंकार है। 4. 'मधुर सुहाग का दर्पण' नामक पंक्ति में रूपक नामक अर्थालंकार है। 5. 'वह ध्रुवतारा' में उत्प्रेक्षा अलंकार है। 6. क्रूर, काल कुसुमित कानन में 'अनुप्रास' नामक अलंकार का एक भेद 'छेकानुप्रास' है। 7. 'करूणा की धारा' में रूपक।

1.5.5 लघु प्रश्न उत्तर :

1. निराला की क्रांति भावना पर टिप्पणी करें।

उत्तर : काव्य–क्षेत्र में प्रचलित प्राचीन रूढ़ियों का त्याग करते हुए नवीनता को काव्य में निरूपित किया। काव्य को छन्द के बन्धन से मुक्त करते हुए सर्वप्रथम 'मुक्त छन्द' में काव्य रचना की। जिसका पहले–पहले विरोध भी हुआ, परन्तु बाद में मुक्त छन्द में काव्य रचना होने लगी।

2. निराला की छायावादी विशेषताएं लिखें।

उत्तर : निराला छायावाद के प्रमुख कवि हैं। इनके काव्य में वैयक्तिकता, सौन्दर्य भावना, प्रकृति चित्रण, प्रेम

भावना, मानवतावाद, वेदना और करुणा, रहस्यानुभूति, राष्ट्रीयता आदि छायावादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति हुई है।

3. निराला की प्रगतिवादी कविताओं के विषय में लिखें।

उत्तर : 'कुकुरमुत्ता', 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' इत्यादि इनकी प्रगतिवादी कविताएं हैं इन रचनाओं में कवि ने पूँजीपति वर्ग के प्रति घृणा और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की है।

4. निराला एक गतिशील कवि है – इसका क्या अभिप्राय है?

उत्तर : निराला का साहित्य में पदार्पण छायावादी कविता से होता है परन्तु इसके पश्चात् इन्होंने प्रगतिवादी कविताएं लिखी। यह स्वच्छंद प्रकृति के व्यक्ति थे। युग के साथ चलना इनका स्वभाव था। छायावादी कल्पना लोक से निकल कर इन्होंने जन साधारण की समस्याओं को कविता में चित्रित किया।

5. निराला की पत्रिकाओं के विषय में लिखें।

उत्तर : सन् 1922 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली 'समन्वय' पत्रिका का सम्पादन किया। जिसमें इनके दार्शनिक विचारों के पुष्ट होने का अवसर मिला। सन् 1923–24 में इन्होंने 'मतवाला' का सम्पादन किया। इस पत्रिका के द्वारा इनकी काव्य–प्रतिभा को खिलने का शुभावसर मिला।

1.5.6 सहायक पुस्तकें

1. निराला : राम विलास शर्मा
2. निराला का काव्य : जगदीश प्रसाद श्री वास्तव
3. शताब्दी पुरुष निराला : डॉ. राम जी तिवारी (सम्पादक)
4. निराला : इन्द्रनाथ मदान (सम्पादक)
5. निराला व्यक्ति और कवि : राम अवध शास्त्री

1.5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. निराला छायावादी कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं – विचार करें।
2. निराला एक गतिशील कवि है – सिद्ध कीजिए।
3. 'जूही की कली' कविता की काव्य–कला की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।
4. निराला की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
5. सिद्ध कीजिए–निराला ने काव्य क्षेत्र में व्यापक क्रांति की।

पाठ संख्या : 1.6

सुमित्रानन्दन पन्त

1.6.0 उद्देश्य
1.6.1 प्रस्तावना
1.6.2 सुमित्रानन्दन पन्त का व्यक्तित्व और कृतित्व
1.6.3 सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यगत विशेषताएं
1.6.4 सप्रसंग व्याख्या
1.6.5 लघु प्रश्न–उतर
1.6.6 सहायक पुस्तकें
1.6.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.6.0 उद्देश्यः

प्रस्तुत पाठ से आप युग–निर्माता कवि सुमित्रानन्दन पन्त से सम्बंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

– पन्त के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
– पन्त की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
– काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

1.6.1 प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य की आधुनिक चेतना के प्रतीक पन्त के काव्य में समय के साथ साथ लगातार परिवर्तन की गूंज भी सुनाई पड़ती है। उनके काव्य में भौतिक, सामाजिक और नैतिक पहलुओं के साथ–साथ आध्यात्मिक चेतना के सूत्र भी स्पष्ट दिखाई देते हैं परिणामस्वरूप उनका जीवन–चिन्तन एकांगी न रहकर संतुलित और परिपूर्ण बन पड़ा है। आधुनिक हिन्दी काव्य को भाषा–सामर्थ्य तथा नयी छन्द–दृष्टि प्रदान कर उन्होंने खड़ी बोली की काव्यशक्ति का जो संवर्द्धन और परिष्कार किया है, वह स्वयं अपने में एक सुन्दर व महत्वपूर्ण देन स्वीकार की जा सकती है।

1.6.2 सुमित्रानन्दन पन्तः व्यक्तित्व और कृतित्व

व्यक्तित्व

सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म 22 मई, सन् 1900 ई में हिमालय के अंचल में अल्मोड़ा से पच्चीस मील उत्तर की ओर स्थित कौसानी नामक एक अत्यंत सुन्दर ग्राम में हुआ था। इनके जन्म के कुछ घण्टों पश्चात् ही इनकी माता का देहान्त हो गया परिणामस्वरूप पिता तथा दादी के वात्सल्य की गंभीर छाया में इनका

प्रारम्भिक लालन–पालन हुआ। मात्र सात वर्ष की आयु में चौथी कक्षा में पढ़ते हुए ही कवि को छन्द–रचना की स्मृति बनी है और 1907 से 1918 ई. को इन्होंने अपने कवि–जीवन का प्रथम चरण माना है। सन् 1918 ई. में पन्त अपने मंझले भाई के साथ बनारस चले आये और जयनारायण हाई स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने लगे। यहीं से इनका वास्तविक कवि–कर्म आरम्भ होता है। सन् 1919 ई. की जुलाई में कवि म्योर, कालेज (प्रयाग) में भरती हुआ था परन्तु सन् 1921 ई. में कवि ने अपने मंझले भाई के कहने पर कालेज छोड़ दिया तथा अपनी कोमल प्रकृति के कारण वह सक्रिय रूप में सत्याग्रह आन्दोलन में भाग नहीं ले सका। महात्मा गांधी द्वारा आरम्भ आंदोलन से इनकी पढ़ाई छूट गई थी परन्तु अब तक पन्त पर संस्कृत, अंग्रेजी व बंगला इत्यादि भाषाओं के चर्चित साहित्यकारों का प्रभाव स्पष्ट दिखने लगा था। अपने एकान्त चिंतन और गंभीर अध्ययन के द्वारा पन्त ने शिक्षा की कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया। सन् 1931 ई. को पन्त कालाकांकर चला गया और वहीं उनकी युवावस्था के सर्वश्रेष्ठ वर्ष वानप्रस्थ स्थिति में ज्ञान–साधना में पशु–पक्षियों के साथ गुजरे। एक वर्ष अल्मोड़ा में व्यतीत करने के बाद सन 1942 ई. में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के संत्रस्त वातावरण में इन्होंने 'लोकयान' नाम के एक व्यापक संस्कृति–पीठ की योजना बनाई जिस हेतु उदयशंकर की टोली के साथ दो–तीन महीने भारत भ्रमण पर रहे। यहां पर कवि ने 'कल्पना' नामक चलचित्र के लिए भी काम किया। सन् 1945 ई. से 1949 ई. तक वह अरविन्द और उनकी दार्शनिक एवं साधनात्मक प्रवृतियों से परिचित हुए। सन् 1950 ई.में वह अखिल भारतीय रेडियो के परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हो गए तथा सन् 1957 ई. की अप्रैल तक वह रेड़ियो से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध रहें। 28 दिसम्बर 1977 को इनका निधन हो गया।

कृतित्व :

मुख्यतः छायावाद के सर्वप्रमुख कवि के रूप में स्मरण किये जाने वाले पन्त जी रहस्वाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नवचेतनावाद से भी कहीं न कहीं जुड़े दिखाई देते है। समय की अवरूद्ध धारा में पन्त को वैविध्यपूर्ण कवि–कर्म के साथ जोड़ा जिस कारण जहां उनकी आरम्भिक कविताओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण हैं, वहीं आगे चलकर मानव जीवन के सुख–दुखः के भिन्न–भिन्न चित्र भी द्रष्टव्य होते हैं। बाद में वह मार्क्सवाद तथा मानवतावाद पर भी कविताएं लिखते रहे। पन्त में यह चिन्तन और विचारों की प्रचुरता उन्हें ओरों से जहां पृथक् करती हैं वहीं उनकी अद्‌भुत प्रतिभा को भी हमारे समक्ष लाती है। सन् 1969 ई. में 'चिदम्बरा' कविता–संग्रह पर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ने एक लाख रूपये के पुरस्कार से सम्मानित किया था। भारत सरकार ने पन्त को उसकी काव्य–सेवाओं के लिए 'पद्‌मभूषण' की उपाधि भी प्रदान की थी। पंत जी ने 1938 में 'रूपाभ' नामक पत्रिका भी निकाली। दर्जनों भर रचनाओं के रचयिता पन्त जी की रचनाओं का संक्षेप में परिचय निम्न से हैः–

काव्य :

उच्छ्‌वास (1920 ई.), ग्रन्थि (1920), वीणा (1927), पल्लव (1928), गुंजन (1932), युगान्त (1936), युगवाणी (1939), ग्राम्य (1940), स्वर्ण किरण (1944), स्वर्णधूलि (1947), युगपथ (1948), शिल्पी (रूपक 1952), अतिमा (1955), वाणी (1957), सौवर्ण (रूपक 1957), कला और बूढ़ा चांद (1959)।

नाटक और रेडियो नाटक : ज्योत्सना (1934), रजतशिखर, शिल्पी।

कहानी : पांच कहानियां (1936)।

समीक्षात्मक गद्य : गधपथ (1941)।

आत्मकथा : साठ वर्ष एक रेखांकन (1960)।

संचयन : आधुनिक कवि (1941), पल्लविनी (1915), रश्मि–बन्ध (1958), चिदम्बरा (1959)।

अनुवाद : मधुज्वाल (1938)।

महाकाव्य : लोकायतन (1964)।

'उच्छ्वास और ग्रन्थि पन्त की आंतरिक आकुलता को वाणी प्रदान करती हैं। गुंजन का प्रकाशन प्रकृति और मानव सौन्दर्य के प्रति नवीन उन्मेष के साथ मानव के प्रति उसकी मंगलकामना और नवीन कला–चेतना की सूचना देता है। युगान्त से ग्राम्य तक संघर्ष की गूंज स्पष्ट सुनायी देती है। स्वर्णधूलि से स्फुट काव्य में कवि की अरविन्दवादी काव्यभूमि के विशद दर्शन होते हैं। 'कला और बूढ़ा चांद' में प्रयोगवादी कविताएं संकलित हैं। पन्त की चिंतन और विचारों की प्रचुरता का प्रभाव उसके समस्त साहित्य पर दिखाई देता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पन्त न केवल एक कवि अपितु नाटककार, कहानीकार, निबंधकार अनुवादक, आदि के रूप में कार्यरत रहे हैं। उनका समस्त साहित्य उनकी विविधता को अपने आंचल में समेटे हुए हिन्दी साहित्य को अपार साहित्य संपदा से धनाढ्य बनाता है। पन्त जी की यही विविधता उन्हें अन्य साहित्यकारों से न केवल पृथक् करती है बल्कि उनकी रचनाधर्मिता के विभिन्न पहलुओं की ओर भी ध्यान दिलाती है। इसी कारण पन्त जी अद्वितीय हैं।

1.6.3 काव्यगत विशेषताएं :

पन्त जी को अपने जीवन में भिन्न भिन्न काव्यांदोलनों और युगों से होकर गुजरना पड़ा जिसका प्रभाव उनकी काव्य– यात्रा पर स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी वैविध्यता के कारण ही पन्त जी का काव्य कवि और विचारक के अद्भुत समन्वय को दर्शाता है। इस आधार पर पन्त जी के काव्य में अग्रलिखित विचार और प्रवृतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं –

1. प्रकृति : पन्त का कविता–काल प्रकृति चित्रण से ही प्रारम्भ हुआ और आजीवन भर उनके काव्य का विषय रही। उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया है कि उन्हें कविता लेखन की प्रेरणा प्रकृति से ही मिली है। प्रकृति का पन्त के व्यक्तित्व पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने प्रकृति को अपने जीवन का अभिन्न अंग मान लिया। यही नहीं उन्होंने तो जीवनसंगिनी के रूप में नारी से भी अधिक महत्वपूर्ण प्रकृति को स्वीकार किया है –

> छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,/तोड़ प्रकृति से भी माया।
> बाले तेरे बाल जाल में, कैसे उलझा दूं लोचन?

पन्त ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को चित्रित किया है। प्रकृति उनके लिए कहीं प्रेयसी है, कही वात्सल्यमयी मां, कहीं वह उपदेशिका है, तो कहीं मार्गदर्शिका। उन्होंने दार्शनिक और आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति हेतु भी प्रकृति को ही माध्यम रूप में अपनाया है।

2. प्रेमानुभूति : पन्त द्वारा रचित 'ग्रन्थि' काव्य से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने कहीं से किसी असफल प्रेमी की पीड़ा को विरह गीत के रूप में प्रस्तुत किया है। इस काव्य की नायिका का न चाहते हुए भी किसी अन्य से विवाह हो जाना तथा अन्य घटनाएं आदि विशेष महत्व नहीं रखती किन्तु प्रेमानुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति विशेष रूप से – उल्लेखनीय कही जा सकती है।

3. गांधीवादी विचारधारा : पन्त के काव्य धर्म में निरन्तर विकास का एक पड़ाव गांधीवाद पर भी

आश्रित होता है। वह गांधी के इस विचार से सहमत थे कि व्यक्ति की आत्मशुद्धि के द्वारा समाज को सुध ाारा जा सकता है। वह गांधीवाद को मानवता में नवीन मूल्यों का व्यवस्थापक और नवीन संस्कृति का ही एक निर्माण मानते हैं –

गांधीवाद जगत में आया, ले मानवता का नव मान।
सत्य–अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।

4. प्रगतिवादी : बदलते परिवेश में पन्त जी भी प्रगतिवादी के स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगे। सन् 1938 ई. में वह लगभग छायावादी से प्रगतिवादी बन गये। मार्क्सवाद के प्रभाव में उन्होंने शोषितों, अशिक्षितों, निर्धनों, मज़दूरों, कृषकों आदि को अपने काव्य में स्थान दिया। 'युगवाणी', तथा 'ग्राम्य' इनकी प्रगतिवादी रचनाएं हैं। यहां आकर पन्त के काव्य के स्थान पर बौद्धिकता और काव्य के स्थान पर दर्शन द्रष्टव्य होने लगा परिणामस्वरूप पन्त का चिन्तक रूप उभर कर सामने आया। इन रचनाओं की कविताओं में समन्वयवादी रूप को स्पष्ट देखा जा सकता है।

5. दार्शनिकता : पन्त जी को जब हम काव्य–रेखा के अन्तर्गत छायावादी, प्रगतिवादी, समन्वयवादी एवं मानववादी आदि देखते हैं तो इसमें एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि वह विभिन्न प्रकार के दर्शनों के अध्येता रहे हैं। उनके काव्य से यह स्पष्ट झलकता है कि उन पर गांधीवाद, अद्वैत–दर्शन, अरविन्द–दर्शन, विवेकानन्द, मार्क्स आदि विचारधाराओं का प्रभाव रहा है।

6. रहस्यवाद और अध्यात्म : पन्त को आरम्भ में प्रकृति के रमणीय रूप ने ही आकर्षित किया है परन्तु उनका चित्रण करते समय कहीं–कहीं पर कवि ने प्रकृति के पीछे विराट की झांकी भी देखी है। उनकी आरम्भिक रचनाओं में रहस्यवाद के कई स्थानों पर दर्शन होते हैं। इसी क्रम में वह अपनी रचना 'स्वर्ण किरण' में प्रकृति और जीवन के विषय में आध्यात्मिक भावनाओं को व्यक्त करते द्रष्टव्य होते हैं। उनकी इन कविताओं पर उपनिषदों का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

7. नारी चित्रण : पन्त जी ने नारी को उच्च स्थान की स्वामिनी स्वीकार करते हुए उसके प्रति पवित्र दृष्टिकोण को ही अपनाया है। नारी का चित्रण करते समय उसे वासनात्मक परिधि से बाहर निकाल कर एक चिन्तन–प्रधान दृष्टि के आधार पर उकेरने का प्रयास किया है। वह नारी के रोम–रोम से स्नेह करते हुए उसके कोमल हृदय को ही स्वर्ग स्वीकार करते हैं–

तुम्हारे रोम–रोम से नारि
मुझे है स्नेह अपार।

8. लोक मंगल की कामना : पन्त जी ने प्रकृति, नारी, सौन्दर्य और मानव–जीवन की ओर देखने की मध्यवर्गीय जीवनदृष्टि को अपरिमित परिष्कार दिया है और राष्ट्र–रंगभेद से ऊपर उठकर अखिल मानव के कल्याण की भावना को महत्व दिया है। उनकी रचना 'लोकायतन' में विश्व–मानवता के कल्याण की भावना को स्पष्ट देखा जा सकता है। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार, "लोक–मंगल की साधना करने वाले उस महाकवि जैसी युग जीवन की व्यापक आर्थिक–सांस्कृतिक समस्याओं की चेतना भी अन्यत्र दुर्लभ है। जिस परिवर्तन को पहले उन्होंने एक भाग्यवादी की दृष्टि से देखा था, आज लोक–मंगल के लिए वे इसी की आवश्यकता अनुभव करते हैं –

यह सच है जिस अर्थ भिति पर,

विश्व सभ्यता आज खड़ी है।
बाधक है वह जन विकास की
उसमें आज अपेक्षित है व्यापक परिवर्तन

9. **भाषा–शैली :** पन्त जी की भाषा खड़ीबोली हिन्दी है। उन्होंने अपनी भाषा के लिए स्वयं शब्दों का निर्माण किया तथा आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग भी किया। भाषा पर पन्त का अद्‌भुत अधिकार था। किसी भी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति क्यों न हो, भाषा सदैव उनके समक्ष अनुचरी के समाज रही हैं। नये–नये शब्दों का चयन उनकी विशेषता रही है। उनकी शैली कोमलकान्त पदावली है। उनके काव्य में श्रृंगार रस की प्रधानता द्रष्टव्य होती है। परन्तु साथ ही वीर, भयानक, करूण, शान्त व रौद्र रस आदि का भी प्रयोग हुआ है। छन्द योजना के अंतर्गत पन्त जी ने मुक्तक, मात्रिक तथा तुकान्त आदि छन्दों का ही अधिक प्रयोग किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पन्त में चिन्तन और विचारों की प्रचुरता थी परिणामस्वरूप वह साहित्य जगत् में विभिन्न युगों व वादों के कवि रहे। समय की धारा के साथ–साथ पन्त की काव्य चेतना में कई बदलाव आये। वहीं साहित्य की अनेक दिशाओं को छूने का प्रयास पन्त के मूलगत–कवि–व्यक्तित्व का ही प्रसार है, क्योंकि काव्य ही उनके अंतर्मन की प्रौढ़ अभिव्यक्ति है।

ताज

1.6.4 सप्रसंग व्याख्या :– "हाय! मृत्यु का ऐसा .... रहें जीवित जन!"

कठिन शब्दों के अर्थ :– अमर – जिसकी मृत्यु न हो सके। अपार्थिव – जो इस पृथ्वी का नहीं, अलौकिक – दिव्य।, विषण्ण – दुःखी। निर्जीव – मुर्दा। संग–सौंध – संगमरमर (पत्थर का महल)। श्रृंगार – सजावट। क्षुधातुर – भूख से व्याकुल। वास–विहीन – बेघर।

प्रसंग :– प्रस्तुत पंक्तियां पाठ्‌य पुस्तक 'दीपिका' में संकलित सुमित्रानंदन पन्त की कविता 'ताज' से ली गई है। यह कविता ताजमहल के प्रति कवि के दृष्टिकोण को दर्शाती है।

व्याख्या :– प्रेम के प्रतीक माने जाने वाले 'ताजमहल' को आधार बनाकर कवि आज बदली हुई परिस्थितियों में इसकी महत्ता पर प्रश्न उठाता है। वह कहता है कि – हाय! मृत्यु का यह कैसा आलौकिक पूजन है? आज जबकि लोगों का जीवन दुःखों से भरा और मुर्दों के समान हो गया है तब इस ताज के पूजन की क्या आवश्यकता है? क्या संगमरमर के महल में मृत्यु को इस प्रकार सजाया जाना शोभा देता है जबकि, लोग (साधारण जनता) आज नंगे, भूख से व्याकुल और बेघर होकर जी रहे हैं। अर्थात् आज के समय में जब चारों और भूख, गरीबी का दौर चल रहा है, इस संगमरमरी मृत्युगाह का इतना सम्मान क्यों किया जा रहा है, मृत्यु का श्रृंगार हो और दूसरी तरफ जीवन तड़प रहा है।

विशेष :– 1. यह कविता प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित है।

2. भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली होते हुए भी प्रभावपूर्ण है।

3. शोषितों के प्रति सहानुभूति, पूंजीवाद का विरोध भी झलकता है।

भारतमाता

"भारत माता/ग्राम वासिनी .... वह अपने घर में/प्रवासिनी"

कठिन शब्दों के अर्थ:– ग्राम वासिनी – गावों में रहने वाली। श्यामल – सांवला, गहरा रंग। प्रतिमा – मूर्ति। दैन्य – दीनता। जड़ित – संज्ञाहीन, अचेतनता। अपलक – एकटक, बिना पलकें झपकाए। नत – झुकी हुई। चितवन – दृष्टि। अधरों – होंठों। चिर – बड़ी देर से। नीरव – मूक, मौन, खामोश। रोदन – रोना। तन – अंधकार। विषण्ण – दुःखी। प्रवासिनी – दूसरे देश में रहने वाली।

प्रसंग :– यह पद्यांश पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की बी.ए. प्रथम वर्ष की कक्षा के हिन्दी विषय में निर्धारित पाठ्य–पुस्तक 'दीपिका' से उद्धृत किया गया है। इन पंक्तियों में कवि पन्त ने भारत माता की स्थिति की ओर संकेत किया है।

व्याख्या :– कवि भारत माता की यथार्थ स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि भारतमाता गांवों में ही रहने वाली है। इसके खेतों में फैला सांवलापन है जिससे इसका आंचल धूलि से भरा मैला है। गंगा और यमुना का पानी इसके आंसुओं का जल है जो निरंतर प्रवाहित हो रहा है। वह मिट्टी की मूर्ति की तरह जड़ है अर्थात् निष्प्राण है उदास है तथा वह दीनता के कारण संज्ञाहीन हो गई है और बिना पलक झपकाए वह झुकी हुई रहती है। उसके होठों में चिरकाल से मौन रोना छिपा हुआ है अर्थात् वह चाह कर भी रो नहीं पा रही अर्थात् उसका रोना बंद होकर अब चुप्पी में परिवर्तित हो चुका है। कई युगों के अज्ञान–रूपी अंधेरे से उसका मन दुःखी है। तभी तो वह अपने घर अर्थात् भारत में रहते हुए भी मानो किसी अन्य देश की रहने वाली हो। तात्पर्य कि वह अपने घर में ही रहती हुई उपेक्षिता है।

विशेष :– 1. कवि ने यथार्थवादी शैली के आधार पर भारत देश की ग्राम–प्रधानता की बात की है।

2. स्वतंत्रता पूर्व भारत की अंधकारमय तस्वीर प्रस्तुत की गई है।

3. भाषा का प्रयोग सुविधानुसार किया गया है।

1.6.5 लघु प्रश्न–उत्तर :

प्र. पन्त को कौन–कौन से पुरस्कार प्राप्त हुए?

उ. पन्त को उनकी पुस्तक 'चिदम्बरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला तथा उन्हें उनकी काव्य सेवाओं के लिए 'पद्मभूषण' की उपाधि भी मिली।

प्र. पन्त की कोई चार काव्य पुस्तकों के नाम लिखें।

उ. पन्त जी ने बहुत सी पुस्तकों का निर्माण किया। उनकी काव्य पुस्तकों में पल्लव, गुंजन, युगांत, ग्राम्य, आदि प्रमुख हैं।

प्र. 'ताज' कविता में कवि क्या कहना चाहता है?

उ. 'ताज' कविता में कवि पूंजीवादी व्यवस्था से पनपे भेद को दर्शाते हुए यह कहना चाहता है कि एक तरफ संगमरमरी मृत्युगाह का सम्मान हो रहा है तो दूसरी ओर जीवित व्यक्ति तड़प रहा है। कवि इस ताज को दिये जा रहे सम्मान पर प्रश्न खड़े करता है तथा जीवन के महत्व की ओर संकेत करता है।

प्र. कविता 'भारतमाता' से क्या संदेश मिलता है?

उ. कवि पन्त ने ग्राम–प्रधानता के आधार पर भारत देश पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। जहां एक ओर वह निर्धनता, भूख, अशिक्षा, शोषण, आवासहीनता आदि बुराईयों को गिनवाता है वहीं विश्व भर को

संयम और अहिंसा की शिक्षा देने वाली भारतमाता को जग–जननी स्वीकार करता है। यह कविता जहां यथार्थवादी शैली के माध्यम से भारत देश की दुर्दशा का चित्रण करती हैं वहीं भारत की विशेषताओं के आधार पर उसका गौरवमान भी करती है। सही अर्थों में यह भारतमाता को श्रद्धांजलि प्रदान करती है।

1.6.6 सहायक पुस्तकें :

1. पंत के काव्य में आभिजाव्यवादी और स्वच्छन्दतावादी तत्व – डॉ. राजेन्द्र प्रकाश (लोक प्रकाशन दिल्ली)
2. प्रतीकी कवि सुमित्रा नंदन पंत – डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर (श्री निकेतन प्रकाशन)
3. सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य – शांति जोशी (राजकमल प्रकाशन)
4. पंत : छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व – विद्वान एन.पी. कुट्टन पिल्लै

1.6.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. पंत जी के प्रकृति चिंतन पर प्रकाश डालें।
2. पंत जी की साहित्यिक यात्रा पर नोट लिखें।
3. पंत जी की काव्यगत विशेषताएं लिखें।

पाठ संख्या : 1.7 **लेखिका : डॉ. कुलदीप कौर**

अज्ञेय

इकाई की रूपरेखा

1.7.0 उद्देश्य
1.7.1 प्रस्तावना
1.7.2 अज्ञेय : व्यक्तित्व और कृतित्व
1.7.3 काव्यगत विशेषताएँ
1.7.4 सप्रसंग व्याख्या
1.7.5 लघु प्रश्न–उत्तर
1.7.6 सहायक पुस्तकें
1.7.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.7.0 उद्देश्य

अज्ञेय एक कवि, निबन्धकार, उपन्यासकार, कहानीकार, संपादक और हिन्दी में नवीन आलोचनाशास्त्र के निर्माता, पत्र–पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक और सांस्कृतिक मनीषी के रूप में प्रसद्धि हैं। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

– अज्ञेय के व्यक्तित्व और कृतित्य से परिचित हो सकेंगे।
– अज्ञेय की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
– काव्य स्थलों की व्याख्या तथा विश्लेषण कर सकेंगे।

1.7.1 प्रस्तावना

'तार सप्तक' के साथ अपनी नयी काव्य–यात्रा आरम्भ करने वाले कवि अज्ञेय उन रचनाकारों में से हैं, जिनका व्यकितत्व कला–सौन्दर्य के नवीन निर्माता और नयी राहों के अन्वेषी, दोनों ही प्रतिमानों की कसौटी पर खरा उतरता है। ध्यान देने योग्य है कि अज्ञेय की काव्यधारा में कोई एक निश्चित भावधारा या विचार सारणी दिखाई नहीं देती जिसका एक प्रमुख कारण उनके जीवन का वैविध्यपूर्ण होना भी स्वीकारा जा सकता है। अज्ञेय हिन्दी साहित्य में उस मोड़ के सूचक हैं, जहां पर किये गये नये–नये प्रयोगों के कारण उन्हें आलोचना के प्रहार सहन करने पड़े। हालांकि अज्ञेय स्वयं प्रयोग का कोई वाद स्वीकार नहीं करते परन्तु यह सत्य है कि अज्ञेय के काव्य के साथ हिन्दी का एक नया व्यक्तिवादी आन्दोलन आरम्भ हो गया, जो प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता और विविधमुखी आन्दोलनों को यदि अपने कलेवर में नहीं समेटता परन्तु उनके लिए समग्र पूर्वभूमि के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अवश्य निभाता है।

1.7.2 अज्ञेय : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

व्यक्तित्व :

अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन है। इनका जन्म 07 मार्च 1911 की कसया जिला देवरिया (बिहार) के एक खुदाई शिविर में हुआ। इनके पिता का नाम श्री हीरानन्द वात्स्यायन है तथा अज्ञेय इनका अपना उपनाम है। बचपन से अज्ञेय अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के थे और सदैव सच बोलते थे इसलिए इनका घरेलू नाम 'सच्चा' था। अपनी जेल यात्राओं के दौरान इन्होंने गुप्त नाम से रचनाएँ कीं, जिस कारण से जैनेन्द्र ने इन्हें 'अज्ञेय' नाम दिया। इनके पिता पुरातत्व– विभाग में एक उच्च पदाधिकारी थे। अज्ञेय का अपने पिता से अधिक लगाव था क्योंकि वह इन्हें अपने साथ बाहर दौरों पर ले जाया करते थे। पिता के साथ इन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया और बड़े होने पर भी इनकी घुमक्कड़ी की यह आदत गई नहीं। अज्ञेय की शिक्षा व्यवस्थित रूप में नहीं हुई। घर पर ही पिता तथा बड़ी बहन से गायत्री मंत्र, अष्टाध्यायी, कालिदास की रचनाओं और अंग्रेजी की मौखिक शिक्षा प्राप्त की। सन् 1925 में मैट्रिक पंजाब से, इंटर–साईंस 1927 में मद्रास (चेन्नई) से तथा 1929 में पंजाब विश्वविद्यालय से बी.एस.सी. की डिग्री प्राप्त की। इसी वर्ष इन्होंने एम.ए. अंग्रेज़ी में प्रवेश लिया परन्तु क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आने पर शिक्षा बीच में ही छोड़ दी।

क्रांतिकारी दल में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण कई योजनाओं से जुड़े रहे परिणामस्वरूप इन्हें कई साथियों के साथ बन्दी बना लिया गया। यहीं से इनके साहित्य–सृजन का कालारम्भ भी होता है। जेल से छूटने पर इन्होंने जीवकोपार्जन के लिए 'सैनिक' तथा 'विशाल' नामक पत्रों का सम्पादन भार संभाला। सन् 1939 में अज्ञेय ने ऑल इण्डिया रेडियों में नौकरी कर ली। फिर सन् 1943 में सेना में भर्ती हो गये। लगभग तीन वर्ष वाद सेना से भी त्यागपत्र दे दिया। 1947 में प्रतीक नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया परन्तु 1950 में पुनः रेडियों में नौकरी कर ली। सन् 1961 में केलफोर्निया–विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्यापक नियुक्त हुए। 1965 में आप दिल्ली से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र 'दिनमान' के प्रधान सम्पादक बने। कुछ वर्ष बाद जोधपुर विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा विभाग के निदेशक रहे। आप दिल्ली में नवभारत टाइम्स के सम्पादक बने पर 1980 में इस पद से त्याग कर स्वतंत्र रूप से साहित्य साधना में लग गए।

अज्ञेय को उनकी अनेक रचनाओं के लिए सम्मानित किया गया। सन् 1964 में 'आंगन के पार द्वार' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन् 1978 में इनकी रचना 'कितनी नावों में कितनी बार' पर भारतीय ज्ञानपीठ ने सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित किया। 04 अप्रैल 1987 को हिन्दी के इस मूर्धन्य कवि, कथाकार व समीक्षक को निधन हो गया।

कृतित्व :

अज्ञेय ने कविता के अतिरिक्त कहानियां, उपन्यास, निबंध एवं यात्रा वृत्तांत भी लिखे हैं। जिनका वर्णन निम्न प्रकार से हैः

काव्य रचनाएँ : भवनदूत, चिंता, हरी घारा पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आंगन के पारद्वार, सुनहरे शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागरमुद्रा पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ।

उपन्यास : शेखर एक जीवनी भाग–1 और भाग–2, नदी के द्वीप, अपने–अपने अजनबी।

निबन्ध–संग्रह : त्रिशंकु, आत्मनेपद, हिन्दी साहितय : एक आधुनिक परिदृश्य, भवन्ती, अन्तरा, लिखि कागह कोरे जोग लिखी, संवत्सर, कहां है द्वार, आत्मपरक, सर्जना और संदर्भ।

कहानी संग्रह : विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी, ज्योदत और ये तेरे प्रतिरुप।

यात्रा वृत्तात : अरे यायावर याद रहेगा, एक बूंद सहसा उछली।

अज्ञेय की सम्पूर्ण कविताओं का संकलन दो खण्ड़ों में प्रकाशित हुआ है, जिसका नाम है – 'सदानीरा'। अज्ञेय ने कुछ ग्रंथों का सम्पादन भी किया जिसके अंतर्गत प्रमुख रूप तार सप्तकों को रखा गया है जो कि क्रमशः 1943, 1951, 1959 तथा 1969 में प्रकाशित हुए। अज्ञेय के सम्पूर्ण काव्य–विकास को चार चरणों में विभक्त कर आसानी से समझा जा सकता है।

अज्ञेय के प्रथम चरण की कविताओं के मुख्य संकलन 'भग्नदूत' (1933) तथा चिंता (1942) है। अज्ञेय की इन आरम्भिक चरण की कविताओं में उत्तर–छायावादी और नव रहस्यवादी संवेदना मूल स्वर के रूप में अभिव्यक्त हुई है। प्रथम संकलन 'भग्नदूत' आस्था, विनय व आस्तिकता के सरल भाव की ओर संकेत करता है। वही 'चिंता' में आवेगात्मक भावों की ऐसी आवृत्ति है कि यह कृति स्फुट कविताओं के संकलन की प्रतीति न देकर दो लम्बी आवेग–प्रधान प्रणय–कविता के रूप में अपनी पहचान बनाती द्रष्टव्य होती है।

अज्ञेय के काव्य–विकास का दूसरा चरण 'इत्यलम्' 'हरी घास पर क्षण भर' तथा 'बावरा आहेरी' के साथ आगे बढ़ता है। यहां हम इससे पूर्व 'तारसप्तक' की कविताओं को भी इसी चरण के अंतर्गत रख सकते हैं। 'तारसप्तक' की कविताओं में अज्ञेय की प्रयोगवादी रचनाओं का विषय प्रेम और दमित कामेच्छा रहा है। 'हरी घास पर क्षण भर' में अज्ञेय का जो वास्तविक कवि रूप उभरता है वह अतीत के सम्मोहन का अस्वीकार, प्रकृति के परम्परित कोमल सौन्दर्य के स्थान पर कुरूप सौन्दर्य को व्यक्त करते हुए गैर–रोमांटिक भावबोध को दर्शाता है। 'बावरा आहेरी' में अज्ञेय सूर्य से स्वयं अपने अहं के गढ़ को गिराने के लिए आग्रह करते हैं। इस संकलन की कुछ कविताएं गहरी सामाजिक चेतना से भरी दिखाई देती है। यह चरण अज्ञेय के कवि रूप के लिए संतोषपूर्ण विकास का चरण सिद्ध होता है।

तीसरे चरण का निर्माण अज्ञेय की तीन प्रमुख रचनाओं के आधार पर होता है – 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे', 'अरी ओ करूणा प्रभामय' तथा 'आँगन के पार द्वार'। 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे' से चल रही अहं विसर्जन की प्रक्रिया 'अरी ओ करूणा प्रभामय' में भी निरंतर रहती है। यहां अज्ञेय स्वयं के अर्थात् आत्म–विस्तार के रूप में उन्नत होते हैं। 'अरी ओ करूणा प्रभामय' में अनुभव की सच्चाई, गहराई और व्याप्ति, प्रकृति–विषयक कविताओं में स्पष्ट द्रष्टव्य होती है। 'आँगन के पार द्वार' संकलन में मनुष्य से ऊँचा उठते हुए आस्तिकता का भाव दर्ज किया गया है। यहां शब्दों के गहरे और सर्जनात्मक प्रयोग को रेखांकित किया जा सकता है।

अज्ञेय के काव्यात्मक विकास के चौथे चरण की कृतियाँ हैं : 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ', 'सागर मुद्रा', 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ', 'महावृक्ष के नीचे', 'नदी की बाँक पर छाया' तथा 'ऐसा कोई घर आपने देखा है'। इनमें 'कितनी नावों में कितनी बार' अज्ञेय की वह रचना है, जिस पर उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार (1978) मिला।

1.7.3 काव्यगत विशेषताएँ

अज्ञेय के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. **प्रणयानुभूति :** अज्ञेय का जब साहित्य में प्रवेश हुआ तब साहित्य –जगत् में जहां एक छोर पर

छायावादी काव्य धारा की कोमलता अपने अंतिम पड़ाव पर थी, वहीं प्रगतिवाद का अखड़पन अपने पैर जमाने में लगा हुआ था। अज्ञेय ने बीच का रास्ता अपनाया। उनके काव्य में प्रणयानुभूति का जन्म इसी आधार पर हुआ है। उनके काव्य संकलन 'चिंता' में छायावादी संस्कारों की छनक स्पष्ट सुनी जा सकती है। इसमें नारी और पुरुष के आपसी संबंधों की समस्या की विवेचना की गई है। 'चिंता' का पुरुष एक ऐसे प्रेम का भूखा है, जिस पर उसका एकाधिकार हो, वह ऐसे अनुराग और प्यार की चाहत करता है, जो उसे किसी अबला से प्राप्त हो :

कोपवत् सिमटी रहे यह चाहती नारी
खोल देने, लूटने का पुरुष अधिकारी

'इत्यलम्' की 'हयिहारिल' को प्रणयानुभूति का प्रतीक बनाकर अज्ञेय ने सौन्दर्यनुभूति शब्दबद्ध की है। 'हयिहारिल' के खण्ड में 'अतीत की पुकार', 'अंतिम आलोक', 'मैं तुम्हारे ध्यान में हूँ' तथा 'प्राण तुम्हारी पदरज धूली' शीर्षक कविताओं में कवि की प्रणयानुभूतियां अभिव्यंजित हुई है। अज्ञेय की यही प्रणय भावना और भी परिष्कृत होकर 'हरी घास पर क्षण भर' में स्पष्ट दिखाई देती है, जहां वह जीवन सार और सत्य के रूप में प्रणय को आधार मानते हैं। परन्तु उसके प्रेम में नगरीय बोध की जटिलताओं के समान तीव्रता नहीं आती तब वह यह कहने पर विवश हो जाता है कि :

चलो उठें अब / और रहे बैठे तो, लोग कहेंगे / धुंधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं / वह हम हो भी / तो भी यह हरी घास ही जाने

2. वैयक्तिकता और सामाजिकता

अज्ञेय व्यक्ति के एकल महत्व को भली–भाँति समझते हैं यही कारण है कि उनकी कविता में व्यक्ति की प्राथमिकता और अप्रतिमता की चर्चा कई स्थानों पर हुई है। उनकी कविता 'नदी के द्वीप' इस दृष्टिकोण से न केवल महत्वपूर्ण बल्कि एक चर्चा का विषय भी रही है। इस कविता में अज्ञेय अकेलेपन को वरण करने की बात कहते हुए मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी जनता को यह संदेश देते द्रष्टव्य होते हैं कि इस प्रवृति को अपनी नियति से जोड़कर देखो और गौरवान्वित होने की चेष्टा करो। इस कविता में अज्ञेय ने स्वीकार किया है कि व्यक्तित्व की सुरक्षा–द्वीप की सुरक्षा आवश्यक है :

किन्तु हम हैं द्वीप / यदि नदी अपने प्रवाह से / द्वीपों को नष्ट कर भी दे / तो भी कहीं फिर खड़ा होगा / नए व्यक्तित्व का आकार / मातः उसे फिर संस्कार तुम देना

अज्ञेय एक साथ एकता को भी और भिन्नता को भी स्वीकार करते हैं परिणामस्वरूप उनकी वैयक्तिकता एक सीमा पर आकर समाज की पंक्ति में मिल जाती है, जो एक पड़ाव के पश्चात् सामाजिकता का स्वर बन अज्ञेय की कविताओं में गूंजती है जैसे– परन्तु इतना होने पर भी उनकी व्यक्तिमत्ता के समावेश को नकारा नहीं जा सकता। यह एक ऐसा समय था जहां इनका सामंजस्य इतना गहरा घुल–मिल जाता है कि दोनों को एक–दूसरे के अलग कर देखना अज्ञेय की विचार–सारणी को अधूरा करना होगा। उनका यह स्वस्थ दृष्टिकोण हमारे समक्ष स्वस्थ सामाजिकता को चित्रित करता है यह बात 'मैं वहां हूँ' में दिखाई देती है :

मैं सेतु हूँ, वह सेतु / जो मानव से मानव का हाथ मिलने से बनता है / जो हृदय से हृदय को, श्रम को शिखा से श्रम की शिखा को / अनुभव के स्तम्भ से अनुभव को मिलाता है / जो मानव को एक करता है

आगे चलकर अज्ञेय की यही सामाजिकता इतना व्यापक रूप धारण कर लेती है कि वह अपने अकेलेपन को

समूह में विलय कर देते हैं तथा यहां से वह देश के लिए आगे बढ़ती है। अज्ञेय में सामाजिक संचेतना भी गहरी और सशक्त है। अज्ञेय का रचनाकार रूप सामाजिक दायित्वों की अवहेलना नहीं करता।

3. पीड़ा बोध

अज्ञेय के काव्य में प्रयोग केवल प्रयोग के लिए नहीं, बल्कि उन्होंने मध्यवर्ग की पीड़ा को भी पहचाना है। वह जानते हैं कि आर्थिक विषमता किस प्रकार इन लोगों के सपनों को चूर–चूर कर देती है। मध्यवर्गीय व्यक्ति थका–मांदा और टूटा हुआ अपने 'स्व' की सीमाओं में इस पीड़ा के मोतियों की खोज करता है। इस पीड़ा को पहचानते हुए अज्ञेय कहते हैं :

> दुःख सब को मांजता है / और / चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने / किंतु जिसको मांजता है / उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें

अज्ञेय इस पीड़ा को बड़ी शक्ति स्वीकार करते हैं परन्तु वह इस बात से भी भली–भांति परिचित हैं कि जब इस शक्ति को सही रूप में पहचाना नहीं जाता, तब व्यक्ति का नाकारात्मक रूप उसके आत्मविश्वास को आहत करता है। यही चोट हीनता की ओर भी अग्रसर होती है। वह इस पीड़ा में जीवन की शक्ति का अक्स देखने के पक्ष में है। अज्ञेय कहते हैं कि :

> दर्द स्वीकार से मिटता नहीं है / स्वीकार से पाप मिटते हैं / पर दर्द पाप नहीं है / दर्द कुछ मैल नहीं / कुछ असुन्दर अनिष्ट नहीं / दर्द की अपनी एक दीप्ति है

4. जीवन को पूर्णता में जीने का आग्रह

अज्ञेय जीवन के आस्वादन में विश्वास करते हैं। वे विश्व पीड़ा को समेटने का यत्न करते हैं। परिणामस्वरूप उनकी कविताओं में आशावाद का स्वर भी गूंजता है। आज का मनुष्य अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा हुआ है। अज्ञेय इस मनुष्य को इन समस्याओं से बाहर आकर जीने को कहते हैं। यहां वह क्षण के आग्रही बन पड़ते हैं। उनके विचार में जीवन को अपनी पूर्णता में जीना ही वास्तविक जीना है। क्षण में उनका विश्वास, जीवन का प्रत्याख्यान नहीं करता बल्कि जीवन में आस्था का प्रतीक है। मृत्यु का निषेध करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि–

भीतर ही भीतर झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूँ नए प्राण पाता हूँ।

5. सत्यान्वेषण

अज्ञेय में जीवन–सत्य को पाने की लालसा, जीवन के अर्थों को समझने के यत्न यह सिद्ध करते हैं कि वह किसी भी सत्य को, किसी भी उपलब्धि को अंतिम नहीं मानते। इसी कारण वह निरंतर अन्वेषण की प्रक्रिया में रहते हैं। 'अंधकार' कविता में कवि का यह कहना कि –

> अन्धकार में सहसा जाग कर / कि जो मेरा है, / वही ममेतर है।

सत्यान्वेषण को ही स्पष्ट करता है। अज्ञेय का यह ममेतर आध्यात्मिक भी है और मानवीय भी। 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' संग्रह में ऐसी अनेक कविताएँ द्रष्टव्य होती हैं। अज्ञेय तनाव से मुक्त होकर अपने अन्तस् का विश्लेषण कर सत्यान्वेषण करते प्रतीत होते हैं।

6. सौन्दर्यानुभूति

अज्ञेय का सौन्दर्य बोध जहाँ एक ओर प्रकृति चित्रण में झलकता है वहीं दूसरी ओर वह स्वतंत्र रूप में इसको नारी के माध्यम से प्रेम पूरित भावों के माध्यम से भी चित्रित करते हैं। 'नखशिख' कविता में कवि पारस्परिक

उपमानों को भी नए संदर्भ प्रदान करते हुए यह भी स्थापित करने का प्रयास करता है :

तुम्हारे नैन, पहले भोर की दो ओस बून्दे हैं?
अछूती ज्योर्तिमय भीतर द्रवित
मानो विधाता के हृदय में, जंग हो गई हो
भाप करुणा की अपरिमित

अज्ञेय की यह सौन्दर्यानुभूति सर्वाधिक उनके प्रकृति चित्रण में द्रव्टव्य होती है। कहीं 'धूप' कवि के मन को चुंधिया देती है तो कहीं 'अन्धेरा' उसे आकाश के अंजन की तरह बरसता प्रतीत होता है।

7. प्रकृति चित्रण

अज्ञेय ने छायावाद और नई कविता के बीच एक सेतु की तरह काम किया है परिणामस्वरूप उन पर छायावाद का प्रभाव भी किसी एक सीमा तक है। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति के अनेक रूपों का अंकन हुआ है। उनमें प्रकृति के तटस्थ और निर्लिप्त चित्र प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति न मात्र रही है। यह अज्ञेय की विशेषता ही है कि वह प्रकृति का चित्रण करते–करते उसमें संवेदनशील, जीवंतता भर देते हैं जिससे प्रकृति की पृष्ठभूमि के रूप में यह चित्रण अत्यंत मनमोहक बन जाता है। यहां तक कि कवि ने प्रकृति के साथ तादात्म्य के चित्र भी अंकित किये हैं :

मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों के, कोयलों के साथ थरथरता हूँ।

अज्ञेय ने प्रकृति के सभी संभावित रूपों का चित्रण किया है। ये रूप है – आलम्बन, उद्दीपन, आलंकारिक, रहस्यात्मक, प्रतीकात्मक तथा मानवीकरण आदि।

8. कलापक्ष

अज्ञेय के काव्य का कला पक्ष विशिष्टता युक्त है। उनके भाषा प्रयोग तथा चयन, प्रतीक विधान, बिम्ब विधान, अलंकार योजना में प्रयोगशीलता तथा बौद्धिकता के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। अज्ञेय ने वैसे तो शुद्ध साहित्यिक एवं परिनिष्ठित खड़ी बोली हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है परन्तु उनकी इस भाषा में विविधता के दर्शन भी होते हैं। नये शब्दों के प्रति उनका विशेष आग्रह रहा है। काव्य–भाषा के क्षेत्र में अज्ञेय के भाषा संबंधी इन प्रयोगों ने एक क्रांति सी पैदा कर दी। अज्ञेय ने अपनी बात को कहने के लिए तद्भव शब्दों का, देशज शब्दों का, विदेशी शब्दों का तथा तत्सम शब्दों एवं सहज ठेठ देसी मिठास भरे शब्दों का प्रयोग सुविधानुसार किया है। अपने भावों व विचारों को जीवंत बनाने के लिए अज्ञेय ने अनेक बिम्बों का प्रयोग किया। अज्ञेय प्रकृति बिम्बों, पौराणिक बिम्बों को भी विशेष महत्त्व देते हैं।

प्रतीक योजना अज्ञेय के काव्य की उल्लेखनीय विशेषता है। यह प्रतीक योजना कवि के नवीन दृष्टिकोण की भी परिचायक है। इसके अतिरिक्त नये–नये उपमानों का और मुक्त छन्द का प्रयोग किया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अज्ञेय में भावुकता व बौद्धिकता का अद्भुत समन्वय है। उनका नवीनता के प्रति आग्रह है। उन्होंने वस्तु एवं शिल्प के नए प्रयोगों से हिन्दी कविता को न केवल नई दिशा दी बल्कि उसे समर्थ एवं सक्षम बनाने का कार्य भी किया। अज्ञेय ने अपने युग के प्रति जागरूक रह कर काव्य–रचना की है। इसलिए उनके काव्य का भाव पक्ष एवं कला पक्ष एक आकर्षक रंग स्थली बन गया है। अज्ञेय का काव्य हमारे लिए नयी दिशा का संकेत बनकर आता है।

1.7.4 सप्रसंग व्याख्या

1. शिशिर की राका निशा

'इधर–केवल झलमलाते .... ओढ़नी की चिन्दियाँ दो–चार !'

शब्दार्थ : वचना = छल। सित = सफेद। निरवधि = अपार। शिशिर = सर्दी। राका = पूर्णिमा की रात। निस्सार = असार। अवलेप = मरहम, लेप। प्रस्तार = विस्तार। बच्चे = आवरण हीन। मिविड़ता = अंधकार। चिन्दियों = चीथड़ों।

प्रसंग : प्रस्तुत अवतरण प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रमुख हस्ताक्षर अज्ञेय द्वारा रचित कविता 'शिशिर की राका निशा' से अवतरित किया गया है। इसमें सर्दियों की चाँदनी रात का वर्णन किया है। चाँदनी का चमकीलापन एक छल है।

व्याख्या : कवि कहता है कि सर्दियों की चाँदनी रात केवल एक धोखा है, जिसका कोई लाभ नहीं है। उसका पूरे आकाश में प्रकाश फैलाना झूठ है, सारहीन है। सर्दियों की चाँदनी रात की शांति में कोई सार नहीं, वह पूर्ण रूप से आसार है। चारों तरफ शांति फैली हुई है। उसकी चमकीली अलौकिकता केवल शून्यता में फैला हुआ लेय ही तो है जो किसी के कोई काम नहीं आता। उस चाँदनी रात की कोमल प्रेम भरी मुट्ठी में आकाश में इधर–उधर झिलमिलाते कुछ तारे घने कुहरे के विष में चेतनाहीन होते जा रहे हैं। वे सिहरते, कांपते, पंगु, टूटे हुए हाथों वाले, नंगे बुच्चे और मरने के योग्य एक–एक कर घने कोहरे के पीछे विलीन हो जाते हैं अर्थात् घने कोहरे में आकाश में टिमटिमाते तारे अपना अस्तित्व खो देते हैं। रात के अंधकार को चीरती–भेदती चीत्कार जैसी एक ऊँची मीनार है। बाँस का टूटा हुआ परदा लटक रहा है। एक खंभे पर चिपके हुए किसी ओढ़नी के दो–चार टुकड़े इधर–उधर हिल रहे हैं।

विशेष :

1. कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है परन्तु उसे कोई देखने वाला नहीं इसलिए वह इस को छल मानता है।
2. अनुप्रास, रूपक, मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग किया है।
3. भाषा में प्रतीकात्मकता विद्यमान है।

1.7.5 सप्रसंग व्याख्या

1. चेहरा उदास

'रात के रहस्यमय .... नभ पार'

शब्दार्थ : रहस्यमय = भेद भरे। स्पन्दित = काँपता हुआ। तिमिर = अंधकार। बौखलाये = क्रोध से पागल हो उठे। दुस्सह = न सही जा सकने वाली। व्यथा = पीड़ा, दुःख।

प्रसंग : यह पद्यांश पाठय–पुस्तक 'दीपिका' की कविता 'चेहरा उदास' से उद्धृत किया गया है। इस कविता के रचनाकार प्रयोगवादी कविता के प्रवर्त्तक अज्ञेय हैं, यहां कवि ने अपनी प्रेयसी की याद का वर्णन किया है जिसके लिए वह मोर को आधार बनाता है।

व्याख्या : कवि अपनी प्रेयसी के प्रणय क्षणों की तुलना मोर पक्षी की बौखलाहट के साथ करता हुआ कहता है कि रात के भेद भरे काँपते हुए अंधकार को कटार–सी भेदती हुई वातावरण में मोर की बौखलाहट भरी

पुकार कौंध गई। (याद रहे मोर पक्षी अपनी मोरनी को समागम या अभिसार की इच्छा होने पर ही पुकारता है – आवाज़ करता है।) इस बौखलाए मोर की अपनी मोरनी से मिलने की पुकार वायु को कँपाती हुई, छोटे–छोटे बिन जगे ओस बिन्दुओं को झकझोरती हुई, न सही जा सकने की पीड़ा–सी सारे आकाश के पार पहुँच गई अर्थात् सारे आकाश में फैल गई।

विशेष : कवि ने मोर के माध्यम से अपनी विरह–व्यथा का वर्णन किया है।

"मेरी चेतना उसी के चिन्तन .... भेद उगा तारा हो।"

शब्दार्थ : चेतना = होश। प्लावित = डूबा हुआ। जीवनानुभूति = जीवन का अनुभव। वातायन = झरोखा, खिड़की। दीप्ति युक्त = चमकदार। स्मृति पटल = यादों की छत। संगी = साथी। स्निग्ध–स्पर्श = प्यार भरा स्पर्श। सान्त्वना = तसल्ली। कुहासा = धुँधला।

व्याख्या : कवि अपनी प्रेयसी के उदास चेहरे में एक आशा की किरण देखते हुए कहते हैं कि युगों–युगों से मेरी सारी होश उसी के चिन्तन में डूबी हुई हैं। मेरी प्रेयसी की याद मुझे कोई चोट नहीं पहुँचाती बल्कि वह तो मेरे जीवन का अनुभव है इसीलिए मेरी पीड़ा की खिड़की खुली ही रहे और मैं उस खिड़की से उस चमकदार छायामय छवि (सूरत) को सदा का पलक–झपकाए देखता रहूँ। इसलिए हे मेरी प्रेयसी के एकमात्र साथी उदास चेहरे, मेरी यादों की छत के तले से तुम मिटो मत, मेरी प्यासी दृष्टि के क्षितिज से हटो मत। मुझे किसी दूसरे के प्यार भरे स्पर्श या तसल्ली को इच्छा नहीं है क्योंकि मेरे जीवन के धुंधलेपन को भेद कर उगने वाला तारा तुम्हीं हो।

विशेष : यह कविता कवि की प्रणय–स्मृति है। प्रेयसी के चेहरे को आकाश के तारे से उपमित किया गया है।

2. सवेरे उठा तो

"सवेरे उठा तो धूप .... असीमता–उधार"

शब्दार्थ : उजास = उजाला। ओक–भर = चुल्लूभर। प्रश्वास = साँस। उल्लास = प्रसन्नता। आँख की झपकी भर = थोड़ी सी–जितनी देर पलक झपकने को देर लगती है।

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ 'दीपिका' के अंतर्गत प्रयोगवादी कवि अज्ञेय द्वारा लिखित कविता 'सवेरे उठा तो' से ली गई हैं। कवि प्रातःकाल उठने पर प्रकृति से वह प्रत्येक मांग पूरी कर लेना चाहता है जिसकी उसे आवश्यकता है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि प्रकृति के कण–कण से कुछ न कुछ उधार पाने की इच्छा व्यक्त करता हुआ कहता है कि सवेरे उठा तो धूप खिल कर छा गई थी और चिड़िया भी अभी–अभी गा गई थीं। तब मैंने धूप से कुछ ऊष्णता (गरमाई) उधार देने को कहा, चिड़िया से थोड़ी वाणी की मिठास उधार देने को कहा। फिर कवि ने घास की पत्ती से तिनके की नोक भर (जरा–सी) हरियाली उधार देने को कहा। कवि ने शंखपुष्पी से किरण का चुल्लू भर उजाला उधार देने को कहा। कवि ने हवा से थोड़ा खुलापन एक सांस भर उधार मांगा। कवि ने लहर से रोमावली के एक रोम की कंपकपी भर प्रसन्नता उधार देने को कहा तथा आकाश से आंख की झपकी भर (बहुत थोड़ी सी) असीमता भी उधार मांगी। कवि के कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य को यही सब तो जीने के लिए चाहिए जो उसे मिल भी जाता है परन्तु बाद में छिन जाता है।

विशेष : कवि की वर्णन शैली में सजीवता है। यहां किसी अरूप (अनदेखे) से प्यार करना कठिन है इस तथ्य की ओर भी संकेत किया गया है। कवि के अनुभव की गहराई और सूक्ष्मता अति प्रशंसनीय है।

"उसने यह कहा .... वह याचक कौन है !"

शब्दार्थ : घुप अन्धेरा = गहरा अन्धेरा। मौन = खामोश, चुप। याचक = माँगने वाला।

व्याख्या : कवि कहता है कि उस अनदेखे अरूप ने जब मुझसे प्यार उधार मांगा तो रात के इस घने अन्धेरे में मैं डरा हुआ चुप रहा और अभी तक चुप हूँ। क्योंकि उस अनदेखे अरूप को मैं प्यार उधार देने से डरता हूँ। न जाने यह उधार माँगने वाला कौन है?

विशेष : कवि कहना चाहता है कि एक तो प्यार उधार नहीं दिया जा सकता दूसरे ऐसे व्यक्ति को जो अनदेखा हो, अजनबी हो।

1.7.6 लघु प्रश्न–उत्तर

प्र.1 : प्रयोगवादी कविता का प्रवर्त्तक किसे कहा गया है? उनकी कोई दो रचनाओं के नाम लिखो।

उत्तर : प्रयोगवादी कविता का प्रवर्त्तक अज्ञेय को कहा गया है। उन्होंने काव्य के साथ–साथ उपन्यास, निबंध कहानी आदि विधाओं में अपना लेखन कार्य किया। उनकी प्रसिद्ध काव्य–कृतियां हैं – हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954) कितनी नावों में कितनी बार (1966)।

प्र.2 : अज्ञेय की काव्यगत विशेषताएं लिखिए।

उत्तर : अज्ञेय की काव्यगत विशेषताएं निम्न से हैं :

1. प्रणयानुभूति 2. वेदनानुभूति 3. वैयक्तिकता और सामाजिकता
4. सत्यान्वेषण 5. प्रकृति–चित्रण 6. जीवन की पूर्णता में जीने का आग्रह
7. सौन्दर्यानुभूति

प्र.3 : अज्ञेय की शिल्पगत विशेषताएं लिखिए।

उत्तर : अज्ञेय की शिल्पगत विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं :

1. भाषा एवं शब्द योजना 2. प्रतीक–विधान 3. बिम्ब–विधान 4. अलंकार योजना 5. छन्द–योजना

प्र.4 : अज्ञेय ने 'सवेरे उठा तो' कविता में किससे क्या–क्या उधार मांगा?

उत्तर : कवि ने प्रस्तुत कविता में धुप से गरमाई, चिड़िया से मधुर स्वर, घास से हरियाली, शंखपुष्पी से उजलापन, लहरों से उल्लास एवं आकाश से असीमता मांगी।

प्र.5 : अज्ञेय को किन–किन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है?

उत्तर : अज्ञेय को उनकी अनेक रचनाओं के लिए सम्मानित किया जा चुका है। उनमें प्रमुखतः सन् 1964 में 'आंगन के पार द्वार' पर 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', सन् 1978 में 'कितनी नावों में कितनी बार' पर 'भारतीय–ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

1.7.7 सहायक पुस्तकें

1. अज्ञेय की जीवन दृष्टि : डॉ. केदार शर्मा
2. अज्ञेय : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (सम्पा.)
3. अज्ञेय सृजन की समग्रता : राम कमल राय
4. कवि अज्ञेय : विश्लेषण और मूल्यांकन : डॉ. ब्रजमोहन शर्मा

1.7.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. अज्ञेय एक प्रयोगवादी कवि हैं – सिद्ध कीजिए।
2. अज्ञेय की काव्यगत विशेषताओं की समीक्षा कीजिए।
3. अज्ञेय की काव्ययात्रा पर प्रकाश डालिये।
4. अज्ञेय के कला पक्ष की विवेचना कीजिए।

पाठ संख्या : 1.8 **लेखिका : डॉ. कुलदीप कौर**

'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना'

1.8.0 उद्देश्य
1.8.1 प्रस्तावना
1.8.2 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का व्यक्तित्व और कृतित्व
1.8.3 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की काव्यगत विशेषताएं
1.8.4 सप्रसंग व्याख्या
1.8.5 लघु प्रश्न–उत्तर
1.8.6 सहायक पुस्तकें
1.8.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.8.0 उद्देश्य :– प्रस्तुत पाठ से आप नयी कविता के विशिष्ट कवि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना से सम्बंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात्

– सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
– सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
– काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

1.8.1 प्रस्तावना :– 'तीसरा सप्तक' के कवि के रूप में पाठक वर्ग के समक्ष आकर सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपना परिचय दर्ज करवाया। नई कविता की सभी बारीकियों को समझने वाले इस कवि ने अपने काव्य का सृजन करते समय समसामयिक जीवन का प्रभावशाली अंकन किया है। उनका काव्य क्षेत्र और व्यक्तित्व अत्यंत व्यापक है जहां वह लोकगीत की मस्तीभरी धुन पर सहज प्रेम के गीत गाने का सामर्थ्य रखते थे वहीं संत्रास और संक्रांति की उलझी हुई संवेदना को व्यक्त करने में भी सक्षम थे। वास्तव में वह कविता को मूलतः मानव की वस्तु समझते हैं। नये कवियों में शायद ही ऐसा कोई अन्य कवि हो जिसने जीवन के इतने विविध पक्षों की अनुभूति अपने काव्य के माध्यम से दी हो।

1.8.2 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का व्यक्तित्व और कृतित्व :

व्यक्तित्व :

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म 15 दिसम्बर, 1929 में उत्तर प्रदेश के बस्ती नामक जिले में हुआ था। इनके माता– पिता स्वयं अध्यापन कार्य करते थे। बस्ती से ही हाई स्कूल की परीक्षा पास करके इन्होंने क्वींस कॉलेज वाराणसी में प्रवेश लिया तथा फिर सन् 1949 में एम.ए. (हिन्दी) की परीक्षा पास की। कुछ समय तक आप स्कूल में अध्यापक रहे और बाद में क्लर्की भी की। पांच वर्ष क्लर्की करने के पश्चात् आकाशवाणी दिल्ली

तथा कुछ अन्य केन्द्रों में भी नौकरी करते रहे। कुछ समय तक 'साप्ताहिक' दिनमान के सम्पादक बने और फिर कुछ समय के लिए बच्चों की पत्रिका 'पराग' का सम्पादन कार्य संभाला। सर्वेश्वर जी अपने स्वभाव के विषय में 'तीसरा सप्तक' में लिखते हैं, 'स्वभाव न अच्छा, न बुरा, बाहर से गम्भीर सौम्य पर भीतर वैसा नहीं, विपत्ति, संघर्ष, निराशाओं से घनिष्ठ परिचय के कारण जरूरत पड़ने पर खरी बात कहने में सबसे आगे। अपनों के बीच बेगानों–सा रहने और बेगानों को अपना समझने की आदत। काहिली, सुस्ती, सोचना अधिक करना कम, अपनी लीक पर चलना और किसी की परवाह न करना, ये मुख्य दोष हैं – दूसरों की दृष्टि में।' गांवों, कस्बों का वातावरण कैसा है यह उनका व्यक्तित्व अनुभव रहा और इसी अनुभव की अगली कड़ी रहा है उनका आर्थिक संघर्ष जो उन्होंने बचपन में देखा और निभाया है। यदि यह कहा जाए कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का काव्य उनके व्यक्तिगत अनुभवों को भी दर्शाता है तो कदाचित् गलत न होगा।

कृतित्व :

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का कवि रूप में हिन्दी पाठकों से परिचय 'तीसरा सप्तक' के माध्यम से हुआ। यहीं से वह 'नई कविता के एक सशक्त कवि के रूप में उभर कर हमारे सामने आए। उनका मानना है कि कविता में विषय–वस्तु प्रमुख है और यदि रूप–विधान पर ज़ोर देने से विषय कमजोर होता हो तो ऐसे रूप–विधान के महत्व को गौण कर देना चाहिए और ऐसा इन्होंने अपने काव्य सृजन के दौरान किया भी। इसी कारण सक्सेना जी की कविता व्यापक जीवन के विविध अनुभवों को साधारण बोल–चाल की भाषा के साथ हमारे समक्ष लिये खड़ी है। उनके द्वारा लिखे गयीं रचनाओं की सूची निम्न हैः–

काव्य संग्रह :– कुआनो नदी (1973), जंगल का दर्द (1976), कविताएं एक तथा दो (1978), बांस का पुल, एक खूनी नाव, गर्म हवाएं, खूंटियों पर टंगे लोग (1982)। इसके अतिरिक्त 'तीसरा सप्तक' में उनकी कविताएं संकलित हैं।

गद्य–पद्य संकलन :– काठ की घंटियां (इसमें इक्हतर कविताएं, एक उपन्यास और बीस कहानियां हैं।

लघु–उपन्यास :– सोया हुआ जल।

सक्सेना जी कविता को विशुद्ध मानव की वस्तु स्वीकारते हैं इसलिए वह मानव के हित हेतु वहां भी जाने को तत्पर द्रष्टव्य होते हैं जहां से उसका कल्याण हो सके। उनके काव्य में विवाह और रोमांस के दर्द से पनपी निराशा स्पष्ट दिखाई देती है जहां–जहां यह निराशा अपना अस्तित्व लिये खड़ी होती है वहां–वहां व्यक्तिगत भावना का प्रबल होना भी आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। कवि व्यक्तिगत स्वभाव से लेकर संसार की बड़ी समस्याओं तक बढ़ता दिखाई देता है जिस कारण उनकी कविता में व्यंग्य के रंग भी स्पष्ट झलकते हैं। उनकी व्यक्तिपरक रचनाएं सूनेपन और एकाकीपन की भावना को अपने कलेवर में समेटे हुए हैं। हालांकि उनका कवि रूप प्रकृति व नारी के प्रति भी आकर्षित हुआ परंतु वह चली आ रही परिपाटी से परे हट कर यहां प्रबल भाव–प्रवणता से किनारा कर बौद्धिक संयम का सहारा लेते द्रष्टव्य होते हैं। उनके काव्य में सामाजिक जीवन की विविध समस्या, व्यंग्य, निराशा, दर्द के साथ–साथ इन पर विजय पाने हेतु आस्था का स्वर भी सुनाई देता है। सक्सेना जी भी एक विशेष बात यह भी है कि अपने समकालीन जीवन के सूनेपन को बहुत गहराई से अभिव्यक्त करते हैं।

1.8.3 सर्वेश्वरपाल सक्सेना की काव्यगत विशेषताएं :

सर्वेश्वर जी की कविता व्यापक जीवन के विविध पहलुओं व अनुभवों को अपने साथ लेकर चलती है क्योंकि उनका मानना है कि कविता किसी भी विषय पर लिखी जा सकती है। यही कारण है कि उनकी कविताओं का व्यक्तित्व विलक्षण और विराट है। उनकी कविताओं में लक्ष्य ही महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। अपने काव्य के

माध्यम से सक्सेना जी ने मध्यवर्ग के उस परिदृश्य को दर्शाने का प्रयास किया है जो इससे पूर्व के काव्य में बहुत कम–मात्रा में देखने को मिलता है। जीवन में प्रत्येक खंड से रस लेने और उसे काव्य रूप में अभिव्यक्त करने की जो क्षमता सक्सेना जी में थी वह उनके समकालीन अन्य कवियों में नहीं। उनके काव्य की विशेषताएं निम्नलिखित रूप में हैं:–

I. व्यापक जीवन का चित्रण :– 'तीसरा सप्तक' वक्तव्य से यह बात स्पष्ट होती है कि वह कविता इसलिए लिखते हैं कि हिन्दी में व्यापक जीवन को कविताओं का विषय बनाने वाले कवि नहीं हैं। इसी कारण उनकी कविता जीवन के व्यापक धरातल पर फैले विविध अनुभवों की कविता है। वह अपनी कविता किसी गुट अथवा बाद में बंधकर नहीं लिखते अपितु मानव जीवन के विस्तृत फलक पर लिखते हैं। उनकी उसी व्यापकता में मानवता के दर्शन हो जाते हैं। जीवन के किसी भी पक्ष से उन्हें परहेज़ नहीं रहा। उनके इस व्यापक जीवन को ध्यान में रखकर आज्ञेय कहते हैं – 'समकालीन सत्य और यथार्थ को जो नये कवि सफल और सबल हाथों से पकड़ सके हैं, जो सच्चे अर्थों में समकालीन जीवन से संयुक्त हैं, उनमें सर्वेश्वर जी का विशेष स्थान है।' यह सक्सेना जी की गहन संवेदना है जिसने उन्हें जीवन के विविध पक्षों को काव्य में उन्मुक्त भाव से चरितार्थ करने को प्रेरित किया। 'नए साल पर' कविता में वह कहते हैं:–

> 'शुभ कामनाएं। शुभ कामनाएं/खेती की मेड़ो पर धूल भरे पांव को।
> कुहरे से लिपटे उस छोटे से गांव को/नए साल पर धूल भरे पांव को।

इस कविता के माध्यम से कवि खेतों में काम करते किसानों को, कुहरे में लिपटे गांव को, लोक गीतों को, बैल को, कटके को, कोल्हू को, मछुआरों को, जाल को, पकती रोटी को, शोर को, जंगल को, तारों को, बिखरे बालों को, बझी सिगरेट को, जूड़े में गुलाबी फूल को, हर नन्हीं याद को, हर नये फूल को अपनी शुभकामनाएं देता हुआ यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि वह कितने व्यापक स्तर पर जीवन को देखने का प्रयास करता है।

II. लोकगीतों की धुन पर सहज प्रेम के गीत रचना:– सक्सेना जी ने जीवन के कई पहलुओं को बौद्धिक स्तर पर ग्रहण किया है। इस कारण उनकी कविता में सहज प्रेम का चित्रण कम है परन्तु फिर यह चित्रण कई स्थलों पर जब भी आया है तो बहुत ही सरस रूप में दिखाई देता है। जन–जीवन से हृदय से जुड़ने की उनकी भावुकता ने उन्हें लोक गीतों की धुनों को अपनाने पर भी विवश कर दिया है। जीवन के सरस एवं आनंदमय क्षणों को वह कविता का रूप देते समय लोकगीत की धुन को साथ लेकर चल पड़ते हैं :– 'यह डूबी–डूबी सांझ/उदासी का आलम/मैं बहुत अनमनी। चले नहीं जाना बालम।'

III. प्रकृति चित्रण :– सक्सेना जी ने अपने काव्य में प्रकृति को महत्व दिया है। उनके द्वारा किया गया प्रकृति चित्रण उनके पूर्ववर्ती कवियों से सवर्था भिन्न व नवीन बन पड़ा है क्योंकि उसमें न तो कोरी इतिवृत्तात्मकता है और न ही जटिल लाक्षणिकता। यह प्रकृति चित्रण उनकी कविता में कई रूपों में देखने को मिलता है, दृश्यांकन के रूप में भी और संवेदना मिश्रित मधुर बिम्बों के रूप में भी। प्रकृति–चित्रण का एक अनूठा दृश्य उनकी कविता 'भोर' में द्रष्टव्य होता है:–

> 'सलमें सितारों की कामवाली/नीली मखमल का खोल चढ़ा/अम्बर का बड़ा सिंदौरा–उल्टा। धरती पर/नदियों के जल में/गिरी–तरू के शिखरों ये ढर–ढर कर/सब सेंदूर फैल गया।'

IV. आस्था का स्वर :– सक्सेना जी जब अपनी कविता में व्यापक मानव जीवन का चित्रण करते हैं तो साथ–ही साथ वह मानव के भविष्य के प्रति भी आस्थावान् दिखाई देते हैं। आत्म–पीड़ा के बोध द्वारा वह

जीवन की महानता की ओर अग्रसर होने को लालायित होते हैं। जब जीवन में पराजय और घुटन अपना वर्चस्व कायम करने लग जाए तो लोग को मानव को किस प्रकार उसका सामना करना चाहिए तथा समर्पण और गति के सहारे कैसे उसे आगे बढ़ना चाहिए इस ओर संकेत करते हुए वह कहते हैं:–

> 'सुनो, मैं भी पराजित हूं/सुनो, मैं भी बहुत भटकी हूं/सुनो, मेरा भी नहीं कोई/पर न जाने क्यों–पराजय ने मुझे शीतल किया/और हर भटकाव ने गति दो/नहीं कोई था, उसी से सब हो गये मेरे,/मैं स्वयं को बांटती ही फिरी/किसी ने मुझ को नहीं यति दी।'

यह पंक्तियां सक्सेना जी की आस्था की ओर ध्यान दिलाती हुई स्पष्ट करती हैं कि उनका चिंतन मानव भविष्य के प्रति किस प्रकार साकारात्मक रूख लेकर आगे बढ़ने को तत्पर रहा है।

V. **भाषा और शिल्प :–** सक्सेना जी की कविता सहज भाव से ओत–प्रोत है उसी कारण उनकी कविताओं की भाषा सामान्य बोलचाल की रही है। अनावश्यक अलंकार और किताबी भाषा का न के बराबर प्रयोग कर उन्होंने सामान्य बोलचाल की भाषा के आधार पर ही अपने काव्य को सशक्त बनाया है। उनकी कविताओं में शिल्प की अपेक्षा कथ्य पर अधिक बल रहा है। इस दृष्टि से उनकी कविता में सपाट बयानी का आना स्वाभाविक है किन्तु यह उनके काव्य की महत्ता को कम नहीं करता अपितु उन्हें नये कवियों में विशिष्ट दर्जा दिलवाता है। 'दूर कहीं मुझे खोजते फिरते मेरे रोते बच्चों की आवाज़ आती है। और मेरी पत्नी रसोई घर की फीकी बीमार रोशनी में बैठी/मेरी प्रतीक्षा करती देखी जाती है।'

यह उद्धरण सपाट बयानी का एक ज्वलंत उदाहरण है।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सक्सेना जी अपने काव्य–कर्म को मानव जीवन के व्यापक चित्रण के आधार पर करते हुए आगे बढ़ते हैं उनका समस्त काव्य प्रत्यक्ष रूप में किसी वाद अथवा गुटबंदी में न बंध कर मानव जीवन पर केन्द्रित रहा है। उनकी असाधारण प्रतिभा ने ही उन्हें अपने समकालीन कवियों से भिन्न किया। नवीन बिम्बों व साधारण भाषा के प्रयोग ने उनकी कविता की चमक को फीका नहीं पड़ने दिया। वह सच्चे अर्थों में जीवन के प्रति ईमानदार रह कर कविताएं लिखते रहें।

1.8.4 सप्रसंग व्याख्या :

(विगत प्यार)

'एक हल्का सा मेघ .... पहली बार किसी को देखा था?'

कठिन शब्दों के अर्थ :– मेघ–बादल। झुरमटों –झाड़ियों का समूह।

प्रसंग :– यह पंक्तियां पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की बी.ए. प्रथम वर्ष की हिन्दी विषय की पाठ्य पुस्तक 'दीपिका' में संकलित सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता 'विगत प्यार' से उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत कविता में कवि ने बीते हुए प्यार की चुभन का वर्णन किया है।

व्याख्या :– कवि अपने बीते हुए प्यार को स्मरण करते हुए कहता है कि एक हल्का सा बादल बरस कर निकल गया है और उसके गुजरने से वृक्षों की पत्तियां धुल गई तथा एक छोटी–सी चिड़िया तेजी से झाड़ियों के समूह को चीरती हुई निकल गई। कुछ नयी कोपलें टूट कर गिर पड़ी हैं। कवि पूछता है कि क्या किसी ने यहां पहली बार किसी को देखा था?

विशेष :– इन पंक्तियों में प्रेम के अनुभव का लौकिक रूप प्रस्तुत किया गया है।

'मैं तो अजनबी हूं .... यह गहरा धुआं था।'

कठिन शब्दों के अर्थ :— अजनबी–अपरिचित, अनजाना। कम्बख्त – बदनसीब, अभागा।

व्याख्या :— कवि कहता है कि मैं इस जगह से अनजान हूं, अपरिचित हूं। शायद मैं यहां पर पहली बार ही आया हूं। मैं तो इस घर को पहचानता तक भी नहीं। सच मानों मैं इस घर को जानता तक नहीं किन्तु ऐसा लगता है जैसे यहां कभी कुछ हुआ था। आगे कवि कहता है अच्छा अब जाता हूं। आभागी आंखें इस जगह को देखकर भर आती है। हालांकि मैं जानता हूं कि यहां पर गहरा धुआं था। तात्पर्य कवि अपने बीते घर को याद कर इन सब बातों को न जानने, फिर धूंधला सा जानने की बात करता है!

(पोस्टर और आदमी)

'मैं अपने को .... जिनके चारों ओर है'

कठिन शब्दों के अर्थ :— विशालकाय–बहुत बड़े। अनुपात – तुलना में। होड़–प्रतिस्पर्धा, किसी विषय में एक दूसरे से आगे बढ़ने की चाह।

प्रसंग :— प्रस्तुत पद्यांश पाठ्य पुस्तक 'दीपिका' में संकलित कविता 'पोस्टर और आदमी' से लिया गया है। इस कविता के रचयिता सर्वेश्वर दयाल सक्सेना है। कवि उस कविता के माध्यम से आधुनिक युग की उस त्रासदी, विडंबना की ओर संकेत करता है जिसमें आदमी की पहचान बड़े–बड़े पोस्टरों में खोकर रह गई है।

विशेष :— I. आम आदमी की तुलना में पोस्टर की बढ़ती महत्ता को दर्शाया हुआ है।

II. आधुनिक समाज में फैल रही चकाचौंध की दुनिया के माया जाल को दिखाया गया है।

'इसी प्रतीक्षा में कि शायद .... वे आदमी से बड़े सत्य हैं।'

कठिन शब्दों के अर्थ :— शोख–धृष्ट, ठीट।

व्याख्या :— कवि कहता है कि इस बड़े पोस्टर के इर्द–गिर्द जमा भीड़ को देखकर मैं वहां इसलिए खड़ा रहा क्योंकि शायद कोई नज़र मुझ पर टिक जाए, शायद कोई मुझे आवाज दे, शायद किसी की सूनी निगाह देख कर ठीट हो जाए, शायद कोई मुझे पहचाने, मुझे बुलाये किन्तु मैं देखता हूं कि आज के युग में आदमी से ज्यादा लोग पोस्टर को अधिक पहचानते हैं तथा आज यही पोस्टर आदमी से बड़े साथ बन गए हैं। तात्पर्य यह कि आज के युग में मानव मूल्य इतने हीन हो गये हैं कि एक जीवित आदमी से ज्यादा एक बेजान पोस्टर का महत्त्व हो गया है।

विशेष :— आम आदमी और पोस्टर की तुलना करते हुए पोस्टर के महत्त्व को दर्शाया गया है।

1.8.5 लघु प्रश्न–उत्तर :

प्र. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की चार रचनाओं के नाम लिखें।

उ. काठ की घंटियां, बांस का पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएं, जंगल का दर्द

प्र. कविता 'विगत प्यार' में कवि क्या कहना चाहता है?

उ. कविता 'विगत प्यार' में कवि अपने बीते हुए घर को स्मरण कर एक गौण संदेश देता है, कवि का प्रकृति, पक्षियों, वस्तुओं, स्थानों को आधार बना कर उस विगत प्यार को स्मरण करना सीधे–सीधे बीते प्यार के दर्द की चुभन का वर्णन करना है।

प्र. 'पोस्टर और आदमी' कविता का प्रतिपाद्य विषय क्या है?

उ. 'पोस्टर और आदमी' कविता के माध्यम से कवि ने आधुनिक युग की विडंबना की ओर संकेत किया

है। आधुनिक युग में एक जीवित आदमी से कहीं अधिक एक पोस्टर की महत्ता को दर्शाना यह दिखाता है कि मानव–मूल्य आज कितने बौने हो गए हैं तथा लोग इस बेजान वस्तु की ओर भाग रहे हैं।

प्र. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य का आधार क्या है?

उ. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना नयी कविता के एक विशिष्ट कवि हैं। उनकी कविताओं का आधार मानव जीवन है उनका मानना है कि कविता प्रत्येक विषय पर लिखी जा सकती है। इसी कारण उनका काव्य किसी गुटबंदी अथवा वाद के साथ नहीं चलता। उनका काव्य केवल मानव के इर्द–गिर्द ही घूमता है।

1.8.6 सहायक पुस्तकें :

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का रचना–कर्म, कृष्णदत्त पालीवाल (वाणी प्रकाशन)
2. सर्वेश्वर और उनकी कविता, कृष्णदत्त पालीवाल (लिपि प्रकाशन)
3. हिन्दी साहित्यकोश भाग–2

1.8.7 अभ्यास के लिए प्रश्न :

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की साहित्यिक यात्रा पर प्रकाश डालें।
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएं मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है, इस पर अपना मत स्पष्ट करें।
3. कविता 'पोस्टर और आदमी' आधुनिक युग के समाज की त्रासदी व्यक्त करती हैं स्पष्ट करें।

पाठ संख्या : 1.9 **लेखिका : डॉ. कुलदीप कौर**

केदारनाथ सिंह

इकाई की रूपरेखा

1.9.0 उद्देश्य
1.9.1 प्रस्तावना
1.9.2 केदारनाथ सिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व
1.9.3 काव्यगत विशेषताएँ
1.9.4 सप्रसंग व्याख्या
1.9.5 लघु–प्रश्न
1.9.6 सहायक पुस्तकें
1.9.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.9.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत पाठ में नयी काव्यधारा व समकालीन कविता में कवि केदारनाथ सिंह से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप

– केदारनाथ सिंह के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
– केदारनाथ सिंह की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
– काव्य की सप्रसंग व्याख्या कर सकेंगे।

1.9.1

केदारनाथ सिंह नयी कविता के एक शक्तिशाली और समर्थ कवि होने के साथ–साथ एक सफल बिम्ब–सृष्टिकर्ता के रूप में भी प्रख्यात हैं। जीवन का संघर्षमय रूप समाज की जटिलताओं और विडम्बनाओं का चित्रण उनके काव्य में स्पष्ट द्रष्टव्य होता है। ग्रामीण वातावरण के प्रति जहाँ वह भावुक व मोह से भर उठते हैं वहीं उनके अंदर बैठा मानवता के प्रति विश्वास भी किसी अर्थ मे ंकम करके नहीं आँका जा सकता परन्तु इतना होने पर भी उनकी संपूर्ण कविता में समझदारी का पलड़ा भावुकता पर भारी पड़ता द्रष्टव्य होता है। उनके दोनों काव्य संग्रहों में काल–व्यवधान का लम्बा सफर दोनों संग्रहों की संवेदना और अभिव्यंजना को भिन्न–भिन्न अर्थ देते हुए एक बड़े अंतर की रेखा साफ खींच देता है। वस्तुतः इसे हम कवि के विकास की प्रक्रिया का परिणाम भी स्वीकार कर सकते हैं।

1.9.2 केदारनाथ सिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व :

केदारनाथ सिंह का जन्म नवंबर 1932 में उत्तर प्रदेश के साधारण से किसान परिवार में हुआ। उनकी शिक्षा उदयप्रताप कॉलेज में तथा फिर हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। यहाँ से एम.ए. के पश्चात् आपने 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब–विधान' विषय पर शोध–कार्य सम्पन्न कर पी–एच.डी. की डिग्री (उपाधि) प्रदान की।

जीवन–यापन हेतु आपने एक कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में कार्य आरम्भ किया। कविता, समीक्षा और संगीत के प्रति इनकी विशेष रूचि रही है, वह स्वयं अपने एक कथन में कहते हैं कि, 'कविता, संगीत और अकेलापन तीनों चीजें मुझे बेहद प्रिय है। मित्र बहुत कम बनाता हूँ, क्योंकि एक व्यावहारिक व्यक्ति में जो खुलापन होना चाहिए, उसका मुझमें नितान्त अभाव है।'

स्वयं के प्रति इतना स्पष्ट दृष्टिकोण और समाज में घटित घटनाक्रम के प्रति सजग व सटीक पक्ष को समझने की जो प्रवृत्ति इनमें रही वही इनके काव्य का आधार बनने में सहायक सिद्ध हुई। संगीत की रूचि इन्हें विरासत में अपने पिता से मिली हालांकि वह आरम्भ से ही अपने पिता की राजनीतिक सक्रियता से स्वयं को दूर ही रखते रहे हैं। इस संदर्भ में उनका कहना है कि, 'पिता इन दिनों सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ता थे, संगीत में रूचि रखते थे और अखबार नियम से पढ़ते थे। ....मैं उनकी राजनीतिक सक्रियता तो ग्रहण नहीं कर सका, पर उनके संगीत–प्रेम से भीतर ही भीतर प्रभावित रहा.....।'

केदारनाथ सिंह ने अपने समकालीन कवियों की तुलना में बहुत कम लिखा है। उन्होंने अपने लेखन का आरंभ 1950 से किया इस बात को वह स्वयं स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, 'जीवन में मैंने जो पहली कविता लिखी, उसका विषय था 'सुभाष की मृत्यु.....इस आरम्भिक प्रयास को छोड़कर व्यवस्थित रूप से लिखना 1950 से आरम्भ किया।' सन् 1959 में तृतीय तार सप्तक के इनकी कुछ कविताएँ प्रकाशित हुई साथ ही सन् 1960 में इनका पहला काव्य संग्रह **'अभी बिल्कुल अभी'** भी प्रकाशित हुआ। एक तरह से यह इनका हिन्दी साहित्य जगत में प्रवेश रहा। सन् 1980 में इनका दूसरा काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ **'जमीन पक रही है'**। दोनों संग्रहों के मध्य में समय का यह लम्बा अंतराल कवि के विकास की प्रक्रिया को संवेदना और अभिव्यंजना के सार पर स्पष्ट प्रस्तुत करता है। 'यहाँ से देखो', 'अकाल में सारस', उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएं मिलती हैं। इनके कवि होने के साथ ही एक समीक्षक के रूप में भी हमारे समक्ष अपनी पहचान अर्जित करते हैं। 'कल्पना और छायावाद' नामक उनकी पुस्तक इस बात का प्रमाण है। वह समय–समय पर दूरदर्शन पर आयोजित साहित्यिक परिचर्चाओं में सम्मिलित होकर स्वयं में छिपे बैठे समीक्षक को भी पाठक व श्रोता वर्ग के समक्ष लाये। निःसंदेह उनका साहित्य प्रचुर मात्रा में नहीं परन्तु जितना है उतना ही 'गागर में सागर' भरने जैसा है।

1.9.3 काव्यगत विशेषताएँ :

केदारनाथ सिंह की काव्यगत विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं –

1. गीतकार के रूप में :- केदारनाथ सिंह का हिन्दी कविता में आगमन एक गीतकार के रूप में ही हुआ। तृतीय तारसप्तक में संकलित उनकी अधिकतर कविताएँ गीत ही हैं। उनके पहले काव्य संग्रह 'अभी बिल्कुल नहीं' में कवि का गीतकार रूप काफी उभर कर हमारे समक्ष आया है। इनके गीतों की यह भी विशेषता रही है कि वे सामान्य विषय के होने पर भी कवि की निजता व सजगता के कारण विशेष बन पड़े हैं। 'फागुन का गीत', 'दुपहरिया', 'वसन्त–गीत', 'पात नए आ गए', 'रात' आदि इनके उदाहरण हैं।

2. प्रकृति चित्रण :– कवि प्रकृति के विविध रूपों को अपने काव्य के माध्यम से व्यक्त करता रहा है। उनकी आरम्भिक कविताओं से ही यह ज्ञात हो जाता है कि वह प्रकृति को आधार बना अपने भावों को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करते रहे हैं। प्रकृति के छोटे से छोटे रूप से लेकर उसकी भिन्न–भिन्न ऋतुओं का चित्रण कवि ने बड़े खुले हृदय से किया है। जहाँ बसन्त ऋतु उन्हें प्रिय लगती है वहीं गुलाब का फूल भी उनके लिए विशेष महत्व रखता है। नदी–नाले, फूल, वन, धूप, खेत, चिड़िया, संध्या, बसन्त, फागुन, पुरवा, पछाहीं हवाएँ, शरह–हेमन्त आदि इनके प्रकृति–विषयक कविताओं में महत्त्वपूर्ण रूप से चित्रित ही नहीं हुए बल्कि महत्त्वपूर्ण

विषय बन कर उभरे हैं अर्थात् इनका प्रकृति संसार व्यापक है। जैसे–

सुबह उठा तो ऐसा लगा कि शरद आ गया।
आँखों को नीला–नीला आकाश भा गया।

3. 'मैं' को महत्व आत्म बोध निज की चेतना :– केदारनाथ की कविताओं में 'मैं' का स्वर विशेष रूप से अपनी पहचान दर्ज करवाता है। उनकी अनेक आरम्भिक कविताओं में 'मैं' निजी स्वायत्तता की चेतना को चरितार्थ करता हुआ हमारे समक्ष आता है। 'प्रक्रिया', 'हस्ताक्षर कर देता हूँ', 'एक पारिवारिक प्रश्न', 'पिता से', 'मैं नहीं हूँ मंत्रद्रष्टा', 'दरपन से एक निजी बातचीत' आदि कविताएँ इस बात का प्रमाण है। कवि द्वारा पीड़ा, कालबोध के चक्र, मानव निर्यात आदि को स्वयं जीने–भोगने के सार पर ग्रहण करने के पश्चात् ही शब्दों में ढाल कर अभिव्यक्त किया गया है। कवि कहता है कि :

मैं जब हवा की तरह
दृश्यों के बीच से गुजरता हुआ
अकेला होता हूँ................ (प्रक्रिया)

4. आधुनिकता बोध :- आत्म–बोध के अंतर्गत 'मैं' की अस्मिता खो जाने की प्रक्रिया से निरंतर गुजर रही है। परिणामस्वरूप मनुष्य संदेह की दृष्टि से भरा चुपचाप चलने को विवश होता जा रहा है और उसकी यही मौन रहने की प्रवृति अथवा उत्तर का अभाव आधुनिकता का बोध चरितार्थ करता द्रष्टव्य होता है। 'कमरे का दानव' शीर्षक कविता में इस बोध का गहरापन साफ दिखाई देता है। कवि ऐसे बेबस हैं जैसे इसे ललकारने व पछाड़ने का साहस कहीं यकायक ही छूट गया है। कवि का यहां तक पहुँचते–पहुँचते बिम्ब–विधान के मोह धीरे–धीरे त्यागते जाना भी एक रूप से आधुनिकता की प्रक्रिया का परिणाम ही है। उनकी कविता में सपाट बयानी का प्रयोग भी इसी ओर संकेत करता है–

'तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'
वहां लिख दो 'सड़क'
फरक नहीं पड़ता
मेरे युग का मुहावरा है
फरक नहीं पड़ता।'

5. संदेह की स्थिति :- समस्त कविताओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कवि की मनः स्थिति संदेह ग्रस्त रही है जो कि कई कविताओं में विशेष रूप से चित्रित की गई है। विश्वनाथ तिवारी के अनुसार 'वर्तमान के प्रति कवि की मनः स्थिति संदेह और शंका की है, जिसके लिए उसके 'कौन जाने' और 'न जाने क्यों' जैसे प्रसंग ध्यान देने योग्य हैं। अपनी एक कविता 'अनागत' में उसी शंकाग्रस्त मनः स्थिति को व्यक्त करते हुए कवि कहता है :–

'आजकल ठहरा नहीं जाता कहीं भी
हर घड़ी, हर वक्त खटका लगा रहता है।
कौन जाने कब, कहां वह दीख जाए?
हर नवा गंतुक उसी की तरह लगता है।'

6. मानव नियति में विश्वास :- दूसरे काव्य संग्रह तक पहुँचते–पहुँचते केदारनाथ की चेतना कई प्रकार के बदलावों के दौर से गुजरी परिणामस्वरूप इसकी कविताएँ अपने कलेवर में मानव नियति से

सीधा संपर्क करती द्रष्टव्य होती हैं। यहाँ न केवल सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों का चित्रण दिखाई देता है अपितु अमानवीय दबाव का विरोध भी स्पष्ट झलकता है।

''मैं बहस शुरू तो करूँ
पर चीजें एक ऐसे दौर से होकर
गुजर रही हैं
कि सामने की मेज को
सीधे मेज कहना
उसे वहां से उठा कर
अज्ञात अपराधियों के बीच में रख देना है।' (फर्क नहीं पड़ता)

प्रस्तुत संग्रह में कविता मानव के दूसरे द्वारा संचालित होने की बेबसी, उसकी यातनापूर्ण स्थितियों, क्रूर, अवस्थाओं आदि का चित्रण करने के साथ–साथ उसकी आकांक्षाओं और सपनों को आवाज देती हैं।

7. भाषा शैली :- केदारनाथ की कविता में भाषा की महत्ता उसके पारस्परिक अपने संबंधों में देखी जा सकती है जिस संदर्भ में कवि स्वयं कहता है कि कविता का सबसे सीधा सम्बन्ध भाषा से है। यही वह माध्यम है जो प्रेषणीयता का कार्य करता है। इनकी कविताओं में कुछ शब्दों का विशेष रूप से हमारा ध्यानाकर्षित करते हैं–अनबूझ, अनबीती, अनबूने, अनबोले, अर्थाचित, अनपढ़ा, अनगाए, अकल्पित, अजानी घाटियां, अनजान कुहरे, फूल अजनबी, तलहटी, कन्दराएं आदि। उर्दू शब्दों का प्रयोग भी स्पष्ट दिखाई देता है। केदारनाथ सिंह की आरंभिक कविताओं में बिम्ब विधान का प्रयोग भरपूर मात्रा में द्रष्टव्य होता है। रूप, रस, गंध, वर्ण और स्पर्श जैसे ऐन्द्रिय विषयों की बिम्ब योजना में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। आरम्भिक कविताओं में बिम्ब और प्रतीकों के प्रति इनके झुकाव ने समीक्षकों की दृष्टि में इनको बिम्ब–सृष्टि में विश्वास करने वाले कलाकार के रूप में स्थापित किया। उनका स्वयं का यह कथन है कि, '......कविता में सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब–विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषयवस्तु से होता है, उतना ही इसके रूप से भी।' परन्तु बाद में इनकी प्रतीक और बिम्ब प्रयोग सम्बन्धी धारणा में बदलाव आता गया तथा बिम्ब धारणा को अपर्याप्त और एकांगी बताया। 'फर्क नहीं पड़ता' कविता इनका काव्यप्रवृति के बदलाव का ही सूचक है और बिम्ब–धर्मिता की निरर्थकता का अनुभव कराती है। इनकी अधिकतर कविताएँ मुक्तक छंद में हैं जिसमें लयात्मकता का प्रायः अभाव है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ सिंह नयी कविता में एक सशक्त हस्ताक्षर है जिनकी कविता में मानवता के प्रति गहरा विश्वास, मानव प्रकृति में आस्था का स्वर और प्रकृति के प्रति नैसर्गिक मोह को स्पष्ट देखा जा सकता है। उन्होंने निःसंदेह अपने समकालीन कविता की तुलना में कम लिखा है परन्तु इनकी कविताओं में तत्कालीन समय की झलकियां व बदलाव के चिन्ह स्पष्ट द्रष्टव्य होते हैं। कुछ समीक्षक इनकी कविताओं में दुरूहता और अस्पष्टता के खतरे से बचने का सुझाव अवश्य देते हैं।

1.9.4 सप्रसंग व्याख्या :

1. फागुन के गीत

गीतों से भरे दिन फागुन...................................तुली की तुली

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हिन्दी साहित्य के नयी कविता के प्रसिद्ध, शक्तिशाली और समर्थ कवि 'केदारनाथ सिंह' द्वारा लिखित कविता 'फागुन के गीत' में संकलित हैं। केदारनाथ सिंह एक सफल बिम्ब

सृष्टिकर्ता के रूप में प्रख्यात हैं। प्रकृति को आधार बना कर यह अपने भावों को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करते हैं। प्रस्तुत कविता 'फागुन के गीत' में भी उन्होंने फागुन के महीने में गाये जाने वाले गीतों की मिठास का वर्णन किया है।

व्याख्याः कवि केदारनाथ कहते हैं कि फागुन गीतों से भरी हुई है। इसके गीत इतने मनमोहक हैं कि मन करता है कि इन्हें गाते ही जाए। इन गीतों की प्रशंसा करते हुए कवि आगे लिखता है कि यह गीत ऐसे हैं कि बांधने से भी नहीं बंधते। जब हम इन्हें बांधने का प्रयास करते हैं तो हमारी बाहें खुली की खुली रह जाती हैं अर्थात् हम चाहकर भी इन्हें बांध नहीं पाते, इन्हें हम तोल नहीं सकते क्योंकि इनके समान कोई और गीत बने ही नहीं हैं जिससे हम फागुन के गीतों की तुलना कर सके। यह गीत तो इस प्रकार के हैं कि जब कोई ये गीत सुनता है तो उसकी आँखें खुली ही रह जाती हैं।

विशेष :1. फागुन के गीतों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।
2. कवि का प्रकृति प्रति प्रेम देखने को मिलता है।
3. भाषा सरल, सपाट और स्पष्ट है।

2. शरद प्रात

सुबह उठा तो...क्यों बहुत असीमा

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हिन्दी साहित्य के नयी कविता के प्रसिद्ध, शक्तिशाली और समर्थ कवि 'केदारनाथ सिंह' द्वारा लिखित कविता 'शरद प्रात' में से लिया गया है। केदारनाथ सिंह एक सफल बिम्बकर्ता के रूप में प्रख्यात हैं। प्रकृति को आधार बना कर यह अपने भावों को अभिव्यक्त करते हैं। प्रस्तुत कविता शरद प्रात में कवि शरद ऋतु का वर्णन कर रहा है।

व्याख्याः कवि कहता है कि मैं प्रातःकाल उठा तो मुझे ऐसा लगने लगा कि शरद ऋतु आ गई है। मैंने उठ कर जैसे ही आसमान की ओर देखा तो आँखों को नीला–नीला आकाश बहुत ही अच्छा लगा। यह नीला आकाश मेरे मन को मोह गया। धूप इस प्रकार झरोखे से गिरी कि लगा जैसे खिड़की का शीशा कांप गया हो। ऐसे समय में मेरे रोम–रोम ने शरद ऋतु को बहुत ही असीस दी अर्थात् शरद ऋतु का ख्याल मन में आते ही मेरा मन खुशी से पुलकित हो उठा।

विशेषः 1. शरद ऋतु की मनमोहकता को दर्शाया गया है।
2. कवि का प्रकृति–प्रेम देखने को मिलता है।
3. भाषा बहुत ही सरल और सपाट है।
4. 'रोम–रोम' में अनुप्रास अलंकार है।

3. बादल ओ

हम नये-नये धानों के बच्चे....................................बादल ओ।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों से पुकार की है कि वह बरस कर धान जो कि अभी बच्चे के रूप में है, उसे बड़ा कर दे और खेतों को हरा–भरा कर दें।

व्याख्याः कवि कहता है कि हे बादल अभी धान के बच्चे बहुत छोटे हैं और हम तुम्हें पुकार रहे हैं। तुम जल्दी से आओ, हम बच्चे हैं और हम अब उड़–उड़ कर चिड़ियों की परछाई को पकड़ना चाहते हैं। यह तभी संभव होगा जब हम बड़े हो जाएंगे और बड़ा होने के लिए हमें तुम्हारी आवश्यकता है। तुम हमारे जन्मों–जन्मों के साथी हो, तुम्हें याद करके मेरा मन उल्लास से भर जाता है। हे बादल तुम हमारे पिता

हो, तुम इन्द्र धनुष हो फूल बरसाओ अर्थात् तुम इन्द्र हो पानी बरसाओ जो कि हम जल्दी–जल्दी बड़े हो जाए और खेतों को हरा–भरा कर दे। प्रस्तुत पद्यांश के माध्यम से कवि बारिश को सम्बोधित कर रहा है कि बारिश के बिना धान बड़ा नहीं हो सकता इसलिए तुम हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो।

विशेष : 1. बादलों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।
2. कवि का प्रकृति–प्रेम दिखाई देता है।
3. भाषा सरल, सपाट और स्पष्ट है।

1.9.5 लघु प्रश्न :

1. केदारनाथ सिंह की किन्हीं चार पुस्तकों के नाम लिखें।

उत्तर : 1. अभी बिल्कुल अभी
2. जमीन पक रही है
3. यहाँ से देखो
4. अकाल में सारस
5. उत्तर कबीर

2. केदारनाथ सिंह को किस कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला?

उत्तर : केदारनाथ सिंह को 'अकाल में सारस' नामक काव्य–संग्रह पर 1989 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

3. केदारनाथ सिंह के काव्य की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

उत्तर : केदारनाथ सिंह के काव्य में प्रकृति–चित्रण, मैं को महत्त्व आत्मबोध निज की चेतना, आधुनिकता बोध संदेह की स्थिति, मानव नियति में विश्वास इत्यादि मुख्य विशेषताएं देखने को मिलती है।

4. केदारनाथ सिंह का हिन्दी कविता में आगमन किस रूप में हुआ।

उत्तर : केदारनाथ सिंह का हिन्दी कविता में आगमन एक गीतकार के रूप में हुआ। तृतीय तार सप्तक में संकलित उनकी अधिकतर कविताएं गीत ही हैं। उनके पहले काव्य–संग्रह 'अभी बिल्कुल नहीं' में कवि का गीतकार रूप काफी उभर कर हमारे समक्ष आया है। इनके गीत अपने कलेवर में अनुभव की छटा, भाषा का ओजस्व रूप लिए इन्हें अपने समकालीन गीतकारों से एकदम पृथक और विशिष्ट बनाते हैं। इनके गीतों की यह विशेषता रही है कि वे सामान्य विषय के होने पर भी कवि की निजता व सजगता कारण विशेष बन पड़े हैं। 'फागुन के गीत', 'दुपहरिया', 'वसन्त गीत', 'रात' आदि इनके उदाहरण हैं।

1.9.6 सहायक पुस्तकें :

1. विश्वनाथ तिवारी – समकालीन हिन्दी कविता
2. उषा रानी – 'नई कविता, पुनर्मूल्यांकन'
3. अज्ञेय (संपा) – 'तीसरा सप्तक'

पाठ संख्या : 2.1 लेखिका : डॉ. हरिसिमरन कौर

हिन्दी उपन्यास : स्वरूप और विकास

पाठ की रूप-रेखा :

2.1.0 उद्देश्य
2.1.1 प्रस्तावना
2.1.2 उपन्यास के तत्व
  2.1.2.1 कथावस्तु
  2.1.2.2 चरित्र–चित्रण
  2.1.2.3 परिवेश
  2.1.2.4 संरचना शिल्प
  2.1.2.5 प्रतिपाद्य
2.1.3 हिन्दी उपन्यास का विकास
  2.1.3.1 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
  2.1.3.2 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास
  2.1.3.3 प्रेमचन्दोत्तर युगीन हिन्दी उपन्यास
2.1.4 सारांश
2.1.5 शब्दावली
2.1.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

2.1.0 उद्देश्य

पाठ्यक्रम का यह भाग हिन्दी उपन्यास से संबंधित है। इसमें हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'थके पांव' का अध्ययन करेंगे। इस पाठ में आपको उपन्यास के स्वरूप एवं हिन्दी उपन्यास के विकास के बारे में परिचय दिया जाएगा। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- उपन्यास के स्वरूप को बता सकेंगे,
- उपन्यास के तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे,
- हिन्दी उपन्यास के विकास को पहचान सकेंगे,
- हिन्दी उपन्यास के विकास के विभिन्न चरणों में इस विधा में क्या–क्या परिवर्तन हुए तथा

कौन–कौन से लेखकों ने इस विधा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया, इस इतिहास को प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.1.1 प्रस्तावना

इस पाठ से आरम्भ होकर आगामी पाठों में आपको भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'थके पांव' का विस्तृत अध्ययन करवाया जाएगा। इस अध्ययन से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि उपन्यास क्या है, इसके कौन–कौन से भिन्न तत्व हैं, उन तत्वों की क्या विशेषताएं हैं। साथ ही यह जानना भी आवश्यक है कि हिन्दी उपन्यास का विकास कैसे हुआ और किन–किन उपन्यासकारों ने इस विधा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इस विधा का आरम्भ 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक से हुआ। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में सबसे पहले तिलस्मी, जासूसी और ऐप्यारी उपन्यासों की रचना हुई। सन् 1877 में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की रचना की और सन् 1882 में लाला श्रीनिवास दास ने 'परीक्षागुरु' नामक उपन्यास लिखा। मुंशी प्रेमचन्द के आगमन से हिन्दी उपन्यास को एक नया आयाम मिला। इसके बाद हिन्दी उपन्यास में नये–नये प्रयोग होते रहे। इस पाठ में उपन्यास के तत्वों एवं विकास पर विचार किया जाएगा।

2.1.2 उपन्यास के तत्व :

'उपन्यास' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है – उप+न्यास। 'उप' उपसर्ग का अर्थ है – सामने या पास रखा हुआ और 'न्यास' शब्द का अर्थ है धरोहर या रखना। इस आधार पर उपन्यास शब्द का अर्थ है – एक लेखक अपने जीवन और समाज के आस–पास जो कुछ देखता–सुनता या अनुभव करता है और अपने भाव–विचार तथा कल्पना के द्वारा सजा–संवार कर उसे हमारे सामने प्रस्तुत करता है, वहीं उपन्यास कहलाता है। वह साहित्यिक रचना जिसे पढ़कर लगे कि उसमें वर्णित घटना हमारे निकट की नहीं बल्कि हमारी ही है, वह उपन्यास कहलाती है। उपन्यास की एक निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकती। सामान्यतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि उपन्यास आधुनिक जीवन के यथार्थ को बहुत निकटता से पहचानने और उपस्थित करने वाली विधा है। यह आधुनिक गद्य–विधा है, जो यथार्थ को बहुत सहजता से उभारती है। इसमें जीवन के यथार्थ को कल्पना द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसके पात्र जीवन्त एवं यथार्थ होते हैं और घटनाएं हमारे जीवन से ही संबंध रखती हैं। उपन्यास के बारे में मुंखी प्रेमचन्द ने कहा है – "मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र–मात्र समझता हूँ। मानव जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास के मूल तत्व हैं।" हिन्दी में पहले जासूसी एवं चमत्कारी उपन्यास लिखे जाते रहे, जिससे पाठक को आनन्द एवं रोमांच का अनुभव होता था। ऐसे उपन्यासों में घटना प्रधान होती थी। आज का उपन्यासकार ऐसी घटनाओं को महत्त्व नहीं देता। वह अपनी रचना में वास्तविकता लाने का प्रयास करता है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक उन्नति के कारण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तेज़ी से विकास एवं परिवर्तन आ रहे हैं। प्रारम्भ में भिन्न भाषाओं से हिन्दी में अनुवाद द्वारा इस विधा का विकास हुआ।

उपन्यास विधा का जन्म पश्चिम में हुआ। पश्चिम के लेखकों ने इस विधा को अत्यन्त लोकप्रिय बनाया और समयानुसार इसमें परिवर्तन भी किए। उपन्यास में मानव जीवन का व्यापक चित्रण होता है। इसमें पात्रों के जीवन का सम्पूर्ण चित्रण होने के कारण पात्रों की संख्या अधिक होती है। आकार एवं संरचनागत दृष्टि से एक कहानी और उपन्यास में अन्तर पाया जाता है। उपन्यास में सम्पूर्ण जीवन का परिचय दिया जाता है और कहानी में जीवन की एक घटना या एक अंशका। एक उपन्यास में निम्नलिखित बातें अवश्य होती हैं –

– किसी एक घटना का वर्णन,

– घटना का किसी पात्र का से सम्बन्ध,

– घटना का किसी स्थान या समय से सम्बन्ध,

– घटना में वर्णित पात्रों का आपसी वार्तालाप,

– घटना को लेखक द्वारा अपने ढंग से प्रस्तुत करना, और

– रचना के पीछे लेखक का कोई न कोई उद्देश्य होना।

किसी भी उपन्यास में निम्नलिखित तत्वों का होना भी आवश्यक होता है :

1. कथावस्तु	2. पात्र या चरित्र चित्रण	3. देशकाल या परिवेश
4. संवाद और भाषा	5. शैली	6. उद्देश्य

संवाद, भाषा और शैली को संरचना–शिल्प भी कहा जाता है और उद्देश्य को प्रतिपाद्य भी कहते हैं।

बोध प्रश्न : नीचे कुछ वाक्य दिए जा रहे हैं। इनके द्वारा उपन्यास के तत्वों का निर्धारण कीजिए :

(1) उपन्यास में घटना का सम्बन्ध पात्रों से होता है।

(2) उपन्यास में वर्णित पात्र आपस में बातचीत करते हैं।

(3) उपन्यास की घटना का संबंध किसी स्थान या काल से होता है।

(4) उपन्यासकार अपने ढंग से कथा को प्रस्तुत करता है।

(5) कथा को कहने के पीछे कोई न कोई कारण होता है।

अभ्यास : 1. चार पंक्तियों में आधुनिक उपन्यास की विशेषताएं बताइए :

2.1.2.1 कथावस्तु

उपन्यास में जिस घटना का वर्णन किया जाता है, उसे कथावस्तु कहते हैं। इसमें घटना का चित्रण विस्तार से किया जाता है, क्योंकि घटना के विस्तार के लिए पर्याप्त अवसर रहता है। उपन्यास में कथावस्तु के स्वाभाविक विस्तार के लिए कथा का श्रृंखलाबद्ध होना आवश्यक है अर्थात् एक प्रसंग का दूसरे प्रसंग के साथ या एक भाव का दूसरे भाव के साथ स्वाभाविक क्रम एवं सम्बन्ध होना आवश्यक है। उपन्यास की कथा उसमें चित्रित पात्रों के चरित्र को विकसित करने वाली होनी चाहिए। आधुनिक उपन्यासों में कथावस्तु का आधार कोई भी सामाजिक समस्या होती है। कथा का आरम्भ किसी भी घटना या वर्णन से हो सकता है। कथावस्तु पात्रों के वार्तालाप या पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण से भी हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि कथावस्तु का एक निश्चित आरम्भ या अन्त हो। यह कहीं से भी शुरू होकर कहीं भी समाप्त हो सकती है।

2.1.2.2 चरित्र-चित्रण :

उपन्यास में पात्रों की संख्या असीमित हो सकती है, जिनमें से एक या एक से अधिक पात्र महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। चरित्र–प्रधान उपन्यास में एक पात्र को ध्यान में रख कर कथा का विकास किया जाता है। आगे आप 'थके पांव' नामक उपन्यास का अध्ययन करेंगे, जिस में केशवदास नामक प्रधान पात्र के इर्द–गिर्द उपन्यास की सारी कथा घूमती है। पूरा उपन्यास इसी पात्र के जीवन से संबंधित है। उपन्यास में पात्रों के चरित्र के विकास के लिए पर्याप्त समय होता है। कुछ उपन्यासों के पात्र समाज के किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व

करते हैं और कुछ उपन्यासों में मानव मन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यासकार पात्रों के चरित्र–चित्रण के लिए कई प्रकार की विधियां अपनाता है। वह पात्र द्वारा किए गए कार्यों द्वारा उसके चरित्र की विशेषताओं को उजागर करता है। जब एक पात्र दूसरे पात्र से वार्तालाप करता है, या एक पात्र अपने बारे में जो कुछ सोचता है, उसके माध्यम से भी उसका चरित्र उजागर होता है। लेखक स्वयं भी पात्रों के बारे में बहुत कुछ कहता हुआ उनका चरित्र–चित्रण करता है।

2.1.2.3 परिवेश

परिवेश से तात्पर्य होता है – देश एवं काल। उपन्यास में वर्णित देश एवं काल का विशेष महत्त्व होता है। लेखक को इस विषय में उचित जानकारी होनी आवश्यक है, इससे रचना में सहजता एवं स्वाभाविकता आ जाती है। यदि लेखक अपनी रचना में ग्रामीण जीवन का वर्णन करता है तो उसे इस जीवन विषयक पूरी जानकारी होनी चाहिए। गांव के घर, गलियां, खेत–खलियान लोगों के रहन–सहन, खान–पीन, रीति–रिवाज, पशुधन तथा अनुष्ठान आदि की पूरी जानकारी होने पर ही लेखक ग्रामीण जीवन का सच्चा एवं सहज चित्रण कर सकता है। इसी तरह शहर के जीवन से संबंधित घटनाओं का वर्णन करने के लिए शहरी जीवन का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक होता है। प्रत्येक उपन्यास का कथानक किसी काल तथा परिवेश से जुड़ा हुआ होता है। कथानक का परिवेश जितना स्वाभाविक और यथार्थपरक होगा, उपन्यास उतना ही विश्वसनीय एवं यथार्थ नज़र आएगा। उपन्यासकार लम्बे–चौड़े विवरणों द्वारा परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। परिवेश के स्वाभाविक चित्रण के लिए ज़रूरी है कि लेखक उपन्यास में वर्णित समाज की व्यवस्था को समझे और उसमें रहने वाले लोगों के रहन–सहन, सभ्यता की प्रगति और मानव मूल्यों का सही ज्ञान प्राप्त करे।

2.1.2.4 संरचना शिल्प

उपन्यास की भाषा, शैली एवं संवाद की बनावट संरचना शिल्प के अन्तर्गत आती है। प्रत्येक रचनाकार की लेखन– विधि अपनी होती है, जो उसकी रचना की शिल्प–विधि कहलाती है। रचना में भाषा का प्रयोग एवं संवाद–योजना भी लेखक की अपनी विधि पर निर्भर करती है। शैली से तात्पर्य है – रचना करने का ढंग। प्रत्येक लेखक की शैली उसकी व्यक्तिगत रुचि और विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण के अनुसार निश्चित होती है। लेखक कथावस्तु को जिस ढंग से प्रस्तुत करता है वही उसकी शैली कहलाती है। कुछ लेखक अपनी रचना में मनुष्य के जीवन के बाह्रय पक्ष पर बल देते हैं और कुछ मनुष्य के मनोभावों को अधिक महत्त्व देते हैं। इसी तरह कुछ रचनाकारों का उद्देश्य सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण होता है, इसलिए उनकी शैली में परिवर्तन आ जाता है। इसी आधार पर वर्णनात्मक, चित्रात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा व्यंग्यात्मक आदि विभिन्न प्रकार की शैलियां अस्तित्व में आती हैं। संरचना शिल्प के अन्तर्गत संवाद का विशेष महत्त्व होता है। इसे वार्तालाप भी कहा जाता है। संवादों से उपन्यास में नाटकीयता आती है और कथावस्तु आगे बढ़ती है। उपन्यास में चरित्रोद्घाटन के लिए संवादों का होना आवश्यक है। भाषा का उचित प्रयोग भी उपन्यास की संरचना को व्यवस्थित रूप प्रदान करता है। उपन्यास में सरल एवं सहज–स्वाभाविक भाषा का प्रयोग होना चाहिए ताकि उसे पाठक सहजता से समझ सके। इसके लिए ज़रूरी है कि आम बोल–चाल की भाषा के शब्दों का सरल वाक्यों में प्रयोग हो।

2.1.2.5 प्रतिपाद्य

प्रतिपाद्य का सामान्य अर्थ है – उद्देश्य। उपन्यास की कथावस्तु द्वारा लेखक क्या कहना चाहता है, यही उद्देश्य कहलाता है। उपन्यास के उद्देश्य को समझने के लिए उसे सही ढंग से पढ़ना आवश्यक होता है। उपन्यास

के संदेश का सामाजिक एवं साहित्यिक मूल्यांकन करने के बाद उसके महत्त्व को समझा जा सकता है।

2.1.3 हिन्दी उपन्यास का विकास

हिन्दी उपन्यास से संबंधित कोई भी अध्ययन करने से पहले यह जानना भी आवश्यक है कि इसका विकास–क्रम क्या है। इससे हम जान पाएंगे कि हिन्दी का उपन्यास साहित्य अपने आरम्भिक रूप में कैसा था, उसकी क्या–क्या विशेषताएं थी और हिन्दी उपन्यास के विकास–क्रम में क्या–क्या परिवर्तन आए। हिन्दी उपन्यास का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। वास्तव में इसका आरम्भ भारतेन्दु काल में हुआ, जिसमें सर्वप्रथम बंगला के उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इस काल में लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। आधुनिकतम शोध के अनुसार अब श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा लिखित 'भाग्यवती' उपन्यास हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में मुंशी प्रेमचन्द का योगदान विशेष महत्त्व रखता है। इसलिए इसके विकास क्रम का अध्ययन करते समय इन्हीं को आधार मान कर हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को तीन भागों में बांटा जा सकता है :

2.1.3.1 प्रेमचन्द एवं हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द से पहले हिन्दी में दो प्रकार के उपन्यास लिखे गए। कुछ उपन्यास केवल मनोरंजन की दृष्टि से लिखे गए, जिनमें तिलस्मी, ऐयारी एवं जासूसी उपन्यास आते हैं। इन उपन्यासों में प्रमुख हैं – देवकीनंदन खत्री रचित चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता संतति, किशोरीलाल गोस्वामी रचित तिलस्मी शीशमहल, हरेकृष्ण जौहर रचित कुसुमलता और रामलाल वर्मा रचित पुतनी महल। जासूसी उपन्यासकार गोपालराम गहमरी ने अद्भुत लाश, बेकसूर की फाँसी और सरकती लाश आदि उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन था। इनमें विचित्र घटनाओं एवं प्रेमकथाओं द्वारा कौतूहल उत्पन्न किया जाता था। तिलिस्मी उपन्यासों में दो–तीन कथाओं को गुत्थियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, जिन्हें सुलझाने के लिए लेखक अनेक घटनाओं का वर्णन किया करता था। इन उपन्यासों की भाषा अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक होती थी। कुछ उपन्यास संदेश–प्रधान होते थे, जिनमें उस समय की सामाजिक समस्याओं का चित्रण करके उनका समाधान भी दिया जाता था। इन रचनाओं में लेखक समाज का यथार्थ चित्रण करते हुए विभिन्न सामाजिक बुराईयों को दूर करने का उपाय बताता था। ऐसे उपन्यासों में श्रीनिवास दास का परीक्षा गुरू, राधाकृष्ण दास का निसहाय हिन्दू, बालकृष्ण भट्ट का नूतन ब्रह्मचारी, एक अजान सौ सुजान, ठाकुर जगमोहन सिंह का श्यामा स्वप्न, किशोरी लाल गोस्वामी का अधखिलाफूल तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय का ठेठ हिन्दी का ठाठ प्रमुख हैं। इस समय कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी हुई जिनमें भारतीय इतिहास के अतीत की कथावस्तु को कल्पना के सहारे प्रस्तुत किया गया। ऐसे उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी का हृदयहारिणी, आदर्श रमणी, तारा तथा रजिया बेगम प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त गंगाप्रसाद गुप्त की रचना पृथ्वीराज चौहान तथा श्यामसुन्दर बैद्य की रचना 'पंजाब पतन' महत्त्वपूर्ण हैं। इस युग के उपन्यासों में आदर्शवाद के साथ भावुकता तथा भारतीय आदर्शों को प्रस्तुत किया गया।

2.1.3.2 प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास

हिन्दी उपन्यास के विकास में मुंशी प्रेमचन्द का आगमन एक नये युग का सूत्रपात करता है। इन्होंने पहली बार जीवन के यथार्थ को साहित्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। इनका पहला उपन्यास सेवासदन सन् 1911 में प्रकाशित हुआ। इसमें समाज की एक समस्या का यथार्थ चित्रण किया गया। लेखक ने सामाजिक अत्याचारों से पीड़ित भारतीय नारी के पतन पर विचार करते हुए वेश्यावृत्ति में सुधार लाने का प्रयास किया।

सामाजिक कुरीतियां, राष्ट्रीय भावनाएं, ग्रामीण जीवन की समस्याएं, मज़दूरों, किसानों की समस्याएं प्रेमचन्द के उपन्यासों के प्रमुख विषय रहे। लेखक ने इन समस्याओं के चित्रण के साथ–साथ मानवीय भावनाओं का भी विश्लेषण किया। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में व्यवहारिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया और साथ ही मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग करके भाषा को सहजता प्रदान की। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं – प्रेमा, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन गोदान और मंगलसूत्र (अधूरा)। प्रेमचन्द युग के अन्य उपन्यासकार हैं – विश्वेश्वरनाथ शर्मा (रचना – भिखारिणी, माँ), पांडेय बेचन शर्मा उग्र (बुधुवा की बेटी, शराबी), चतुरसेन शास्त्री (ह्दय की प्यास, अमर अभिलाषा, बहते आंसू) और सियाराम शरण गुप्त (गोद, अंतिम आकांक्षा), जयशंकर प्रसाद रचित उपन्यास हैं – कंकाल, तितली और इरावती। प्रेमचन्द युग में उपन्यास लेखन में दो प्रकार की लेखन शैली का जन्म हुआ – प्रेमचन्द शैली तथा प्रसाद शैली। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में घटनाओं को अधिक महत्त्व दिया और प्रसाद ने मानव मन के विश्लेषण पर बल दिया।

2.1.3.3 प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास के विकास में विशेष गति आई। प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा में से सामाजिक एवं समाजवादी उपन्यास लेखन की परम्परा विकसित हुई। इन उपन्यासों में समाज की वास्तविकताओं को प्रमुख स्थान दिया और धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों और आर्थिक शोषण को उपन्यासों की कथावस्तु में स्थान प्राप्त होने लगा। इस प्रकार के उपन्यासों में यशपाल, उपेन्द्रनाथ अश्क, अमृत राय, रांगेय राघव, भीष्मसाहनी, अमृतलाल नागर, मोहन राकेश तथा राजेन्द्र यादव आदि के उपन्यास आते हैं। इस समय कुछ अन्य लेखकों ने मानव मन को कथा का मुख्य आधार बना कर व्यक्ति की मानसिक समस्याओं पर विचार किया। ऐसे उपन्यासों पर मनोवैज्ञानिक फ्रायड, एडलट एवं युंग के विचारों का प्रभाव पड़ा। इन उपन्यासों में मानव मन की अवचेतन क्रियाओं एवं मानसिक ग्रंथियों को कथा का आधार बनाकर पात्रों का चरित्र–चित्रण प्रस्तुत किया गया। ऐसे उपन्यासों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यास प्रमुख हैं। इसी युग में आंचलिक उपन्यास भी लिखे गए, जिनमें किसी क्षेत्र या अंचल विशेष को कथा का आधार बना कर उस क्षेत्र के रहन–सहन, आचार–विचार एवं भाषा आदि का विशेष वर्णन किया गया। हिन्दी के प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास हैं – मैला आंचल, परती परिकथा, सागर लहरें और मनुष्य, कब तक पुकारूं और आधा गाँव। इसी काल में कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भी हुई, जिनमें मुख्य हैं – दिव्या, सिंह सेनापति और मुर्दों का टीला।

2.1.4 सारांश

इस पाठ में आपने यह देखा कि उपन्यास विधा साहित्य की लोकप्रिय विधा है। इस पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद आपने यह भी जान लिया कि उपन्यास का स्वरूप क्या है। उपन्यास केवल काल्पनिक कथा नहीं बल्कि जीवन के सत्यों को प्रस्तुत करने वाली विधा है। हिन्दी उपन्यास का आरम्भ 19वीं शदी के प्रथम दशक में हुआ। उस समय से लेकर आज तक हिन्दी उपन्यास लेखन परम्परा में विभिन्न परिवर्तन आते रहे हैं। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य संसार में उपन्यास का विकसित एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है।

2.1.5 शब्दावली

तिलस्मी	–	अद्‌भुतया अलौकिक व्यापार, करामात
प्रतिपाद्य	–	उद्देश्य, संदेश
अन्तर्द्वन्द्व	–	मानसिक उलझन

परिवेश	—	वातावरण
अनुष्ठान	—	धार्मिक रीति–रिवाज
संरचना	—	बनावट
सूत्रपात्र	—	आरम्भ

2.1.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न :

(i) सही (ii) सही – इस बातचीत को संवाद कहते हैं। (iii) सही – इस तत्व को देशकाल तथा वातावरण कहते हैं। (iv) सही – इस तत्व को शैली कहते हैं। (v) सही – इस तत्व को उद्देश्य कहते हैं।

अभ्यास : निम्नलिखित उपन्यासों के रचनाकारों के नाम इस तरह से हैं :

चन्द्रकांता संतति	—	देवकी नन्दन खत्री
मैला आँचल	—	फणीश्वरनाथ रेणु
परती परिकथा	—	फणीश्वरनाथ रेणु
सागर, लहरें और मनुष्य	—	उदयशंकर भट्ट
कब तक पुकारूं	—	रांगेय राघव
आधा गाँव	—	राही मासूम रज़ा
दिव्या	—	यशपाल
मुर्दों का टीला	—	रांगेय राधव
सुनीता	—	जैनेन्द्र
जहाज का पंछी	—	इलाचन्द्र जोशी
अपने अपने अजनबी	—	अज्ञेय
अंधेरे बंद कमरे	—	मोहन राकेश
बूंद और समुद्र	—	अमृतलाल नागर
तमस	—	भीष्म साहनी
झूठा सच	—	यशपाल
गिरती दीवारें	—	उपेन्द्रनाथ अशक
उखड़े हुए लोग	—	राजेन्द्र यादव

पाठ संख्या : 2.2 **लेखिका : डॉ. हरिसिमरन कौर**

'थके पांव' उपन्यास का सार

इस खण्ड में आपको पाठ्यक्रम में निर्धारित उपन्यास 'थके पांव' से परिचित करवाया जाएगा। इस प्रसिद्ध रचना के लेखक हैं श्री भगवती चरण वर्मा। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसकी कथा का सम्बन्ध मध्यवर्ग के एक परिवार से है। भारतीय समाज में मध्यवर्गीय परिवारों को विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। विभिन्न संघर्षों से जूझते हुए अपने सम्बन्धियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहते हैं। इस उपन्यास में एक ऐसे व्यक्ति की जीवन–गाथा को चित्रित किया गया है, जो उम्र भर अपने परिवार के लिए संघर्ष करता रहा और वृद्धावस्था में स्वयं को पूरी तरह हारा हुआ अनुभव करता है। उसे लगता है कि उसके पैर पूरी तरह से थक गए हैं और वह हताश हो चुका है। इस अवस्था में उसे इस बात की प्रसन्नता भी होती है कि उसने अपने परिवार की सेवा में अपने सभी कर्त्तव्य पूरे किए। इस उपन्यास को समझने के लिए इसे पढ़ें। हम आपको इसकी कथावस्तु से पूर्ण रूप से परिचित करवाएंगे और इसकी संरचना को स्पष्ट करते हुए इसके उद्देश्य का विस्तृत विवेचन करेंगे।

रूप-रेखा

2.2.0 उद्देश्य

2.2.1 प्रस्तावना

2.2.2 'थके पांव' उपन्यास का सार (कथावस्तु)

2.2.3 कथावस्तु की समीक्षा

2.2.4 सारांश

2.2.5 बोध प्रश्न

2.2.0 उद्देश्य

इस पाठ में आप प्रसिद्ध कथाकार श्री भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'थके पांव' के सार अथवा कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

- उपन्यास की कथावस्तु से परिचित हो पाएंगे।
- इस उपन्यास की कथा संक्षेप में बता सकेंगे।
- उपन्यास में आए पात्रों से परिचित हो सकेंगे।
- इस उपन्यास के आधार पर उस परिवेश की चर्चा भी कर सकेंगे, जिसका वर्णन इसमें किया गया है।
- उपन्यास की भाषा–शैली की विशेषताएं बता सकेंगे।

- उपन्यास के प्रतिपाद्य की व्याख्या कर सकेंगे।

2.2.1 प्रस्तावना

उपन्यास कथा–साहित्य की आधुनिक विधा है। यह कहानी की तुलना में आकार में बड़ा होता है। इसका कारण यह है कि उपन्यास में जीवन का व्यापक चित्रण होता है, जबकि कहानी में जीवन के किसी एक खंड का चित्रण होता है। उपन्यास में कई चरित्रों का विशद वर्णन किया जाता है और उसका घटना फलक भी व्यापक होता है। इसमें भाषा एवं शैली का अधिक वैविध्य भी मिलता है। मनुष्य का जीवन जटिल होता है, उसी के अनुरूप पात्रों के जीवन के चित्रण उपन्यासकार का लक्ष्य होता है। उपन्यासकार जीवन के प्रत्येक पक्ष का विशद चित्रण करके विभिन्न मनोवृतियों के पात्रों का परिचय देता है। भगवती चरण वर्मा हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं, जिन्होंने 'अपने खिलौने', 'आखिरी दांव' तथा 'थके पांव' आदि उपन्यासों की रचना की है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र सामान्य मनुष्य का प्रतीक है, जो जीवन भर संघर्ष करते–करते अन्त में थक कर टूट जाता है और उसके पांव इतने थक जाते हैं कि वह स्वयं को पूर्ण रूप से थका हुआ महसूस करता है।

2.2.2 'थके पांव' उपन्यास का सार (कथावस्तु)

इस उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध कानपुर शहर में रहने वाले एक परिवार से है। लेखक ने उपन्यास की कथा को बारह भागों में बांटा है। यह भाग छोटे–छोटे अध्यायों के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इन अध्यायों के परिचय के आधार पर हम इस रचना की कथावस्तु का विश्लेषण करेंगे, ताकि उपन्यास का सार पूर्ण रूप से स्पष्ट हो सके।

प्रथम अध्याय में लेखक अपनी तरफ से एक व्यक्ति का परिचय देता है, जो अब बूढ़ा हो गया है। इस व्यक्ति का कोई नाम नहीं दिया गया। वह केवल एक बूढ़ा व्यक्ति है, जो जीवन भर मेहनत करके थक गया है। वह अपने घर की तरफ चला जा रहा है। उसके पैरों में दर्द हो रहा है और उससे चला नहीं जा रहा। उसके पैरों में कोई कष्ट नहीं है फिर भी वह चलते समय कष्ट का अनुभव कर रहा है। उसे लगता है कि वह बहुत बुरी तरह से थका हुआ है। उसके जूते फटे हुए हैं। बहुत दिनों से वह नये जूते लेना चाहता है, परन्तु ले नहीं पाया। उसके मोजों में अनेक छेद हो गए हैं, परन्तु वह इतना विवश है कि नये जूते–मोजे नहीं ले सकता। धीरे–धीरे लड़खड़ाता हुआ वह अपने कमरे में पहुंच जाता है, जहां एक तख्त पर पन्द्रह साल पुरानी दरी बिछी हुई है। वह एक आरामकुर्सी पर गिर जाता है और जूते–मोजे उतारता है और फिर तख्त पर लेट जाता है।

यह व्यक्ति अपने भीतर एक अजीब प्रकार की बेचैनी का अनुभव करता है। उसे लगता है कि उसे बेबसी एवं विवश्ता का रोग हो गया है, जिसका इलाज होना चाहिए। वह अपनी कल की ज़िन्दगी से मुक्त होकर नया जीवन जीना चाहता है, परन्तु उसे शंका है कि ऐसा कुछ नहीं होगा। जैसे वह उम्र भर चलता रहा है, चल–कर थक गया है, वैसे ही आगे भी चलते रहना होगा। उसके मन पर कितनी भी उदासी क्यों न हो, फिर भी उसे चलना पड़ेगा। उसके पैर कितने भी थके हों, उसे और चलना पड़ेगा। इस अध्याय में इस थके हारे व्यक्ति का सामान्य सा परिचय पाठक को देकर लेखक कथा को आगे बढ़ाता है।

इस अध्याय में उपन्यास के मुख्य पात्र केश्वचन्द्र का परिचय दिया गया है। केश्वचन्द्र वह व्यक्ति है, जो पिछले अध्याय में एक बूढ़े व्यक्ति के रूप में आया है। तख्त पर लेटा हुआ वह अपने विगत् जीवन को याद करता है। उसके पिता का नाम रामचन्द्र था, जो कानपुर की एंड्रूज कम्पनी में छोटे बाबू यानि

कलर्क थे। इन्हें पचास रुपए वेतन मिलता था, जिसमें उसके परिवार की ज़रूरतें बड़े आराम से पूरी हो जाती थीं। परिवार में रामचन्द्र की पत्नी और चार बच्चे थे। केश्वचन्द्र सबसे बड़ा था, उससे छोटा रमेश, फिर लड़की सुधा और सबसे छोटा सुरेश। यह परिवार एक बड़े से मकान में रहता था। केशव की माँ बीमार रहती थी, इसलिए केशव की शादी जल्दी कर दी गई। इस तरह परिवार में उसकी पत्नी माधुरी भी थी। केशव बी.ए. पास नवयुवक था, परन्तु बेरोज़गार था। केशव अपनी जवानी के दिनों को याद करता है, जब उसकी नवयुवकी पत्नी बहुत चंचल एवं हंसमुख थी, वह सोचता है कि जीवन के संघर्षों ने माधुरी की चंचलता छीन ली है और अब वह बहुत चिड़चिड़ी हो गई है। जीवन के बीते दिनों को याद करता हुआ केशव उस समय को याद करता है जब परिवार में छोटी–छोटी खुशी की बातों पर दावत होती थी। सारा परिवार मिलकर प्रसन्न होता था। इसी अध्याय में केशव की बहन के विवाह की बात का प्रसंग भी है, जिसमें बाबू बांकेलाल अपने बेटे गोपीनाथ का विवाह तय करने आते हैं, जो फतेहपुर में चुंगी का इन्सपैक्टर है। बांकेलाल पुत्र के विवाह में पाँच हज़ार का दहेज चाहते थे, परन्तु रामचन्द्र उन्हें तीन हज़ार का दहेज देना चाहते हैं। विवाह चार हज़ार के दहेज पर तय होता है। केशव याद करता है कि उसने अपने बाबू जी की चिन्ता दूर करते हुए कहा था कि वह जल्दी ही कोई नौकरी ढूंढ कर दहेज की रकम जुटा देगा, केशव को आश्चर्य होता है कि उस उम्र में उसने कितना उत्साह एवं जोश था और वह उसी दिन से नौकरी ढूंढने निकल पड़ा था। इसके विपरीत आज यह कितना थका हुआ है। उसका शरीर थक गया है, आत्मा मुरझा गई है और मन शिथिल हो चुका है।

इस अध्याय में केशव को याद आता है कि उसने कई जगह अरजियां दी और बहुत दौड़–धूप की परन्तु नौकरी नहीं मिली। कहीं पर मैनेजर के रिश्तेदार को रख लिया जाता और कहीं पर कोई और सिफारिश चल जाती। केशवचन्द्र हर रोज़ नौकरी के लिए घर से निकलता है, परन्तु उसे कहीं भी सफलता नहीं मिली। इसी बीच सुधा के ससुराल वाले तिलक की मांग करते हैं, जिसके लिए रामचन्द्र को चार हज़ार रुपया जुटाना पड़ा। सुधा के सुसराल केशवचन्द्र ही जाते हैं, जहां उसके पति को तिलक चढ़ाया जाता है। बहुत बड़ी दावत होती है। बांकेलाल के घर में सभी प्रकार की सुख–सुविधाएं हैं। वह और उनका बेटा गोपीनाथ बड़ी–बड़ी ढींगें हांकते हैं, क्योंकि उन्हें वेतन से अधिक रुपया रिश्वत द्वारा प्राप्त होता है। केशवचन्द्र को उनकी ये बातें अच्छी नहीं लगती, क्योंकि उसे रिश्वत लेना पाप लगता है। उसका मन वितृष्णा से भर उठता है और वहां से लौटते हुए वह एक निराशा का अनुभव करता है।

चौथे अध्याय में रामचन्द्र के परिवार में कुछ नयीं घटनाएं घटती हैं। केशवचन्द्र की अच्छी नौकरी लग जाती है, परन्तु घर में खर्च अधिक होने से आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं होता। सुधा का विवाह हो जाता है। विवाह में बहुत–सा कपड़ा–लत्ता उधार लिया जाता है। कपड़े वाला अक्सर घर पर आकर पैसा मांगता है, जिससे सभी चिन्तित हो जाते हैं। वह उधार वापिस न मिलने पर मुकद्दमा करने की धमकी भी देता है। सुरेश कॉलेज की फीस मांगता है, परन्तु घर में इसके लिए भी पैसा नहीं है। माधुरी अपनी सोने की माला बेचकर सुरेश की फीस देती है। केशव को नौकरी के लिए जो दौड़–धूप करनी पड़ी थी, उसके कारण उसे लू लग जाती है और वह कई दिनों तक बीमार भी रहता है। बीमारी और कमज़ोरी की हालत में भी उसे नई नौकरी पर जाना पड़ता है।

इस अध्याय में लेखक सुधा के परिवार का संक्षिप्त परिचय देता है। उसके ससुर एवं पति को अच्छी आमदनी है और उनका बढ़िया मकान भी है। केशव की तरक्की हो जाती है, अब तक उसका परिवार भी बड़ा हो गया है और उसके पाँच बच्चे हैं। अब उसे अपने परिवार को अच्छी तरह चलाने के लिए काफी आय मिलती है।

उसका सबसे बड़ा बेटा है मोहन, जो पढ़ने लिखने में होशियार है। केशव उसे अपनी तरह मामूली कर्ल्क न बना कर बड़ा अफ़सर बनाना चाहता है। वह बी.ए. पास करने के बाद उसे आई.ए.एस. की परीक्षा में बैठाना चाहता है। इसी अध्याय में लेखक ने बिहारी लाल का परिचय दिया है, जो मोहन के लिए अपनी बेटी का रिश्ता लेकर आता है। केशवचन्द्र अपने बेटे को पढ़ाना चाहता है और अभी विवाह नहीं करना चाहता। बिहारी लाल उन्हें पाँच हज़ार दहेज देने का लालच देते हैं, इसलिए वे मान जाते हैं। मोहन का विवाह हो जाता है और केशवचन्द्र पाँच हज़ार रुपयों में एक बढ़िया मकान खरीद लेते हैं।

विवाह के बाद भी मोहन की पढ़ाई चलती रहती है। वह आई.ए.एस. की परीक्षा में बैठता है परन्तु पास नहीं होता। इसके बाद वह वकालत पास करता है और कुछ दिन वकील भी बनता है। कोई खास आमदनी न होने के कारण वह एक कम्पनी में नौकरी कर लेता है और वहाँ अस्सिटैंट मैनेजर बन जाता है। केशवचन्द्र को बहुत दुःख है कि मोहन का विवाह जल्दी कर देने से वह आई.ए.एस. की परीक्षा पास नहीं कर सका, परन्तु दूसरी तरफ इस बात की खुशी है कि इस विवाह के फलस्वरूप आज उनका परिवार एक अच्छे और बड़े मकान में रह रहा है। वह अपने दुःख को यह सोचकर भी भुला देते हैं कि मोहन कोई मामूली बाबू नहीं, बल्कि अस्सिटैंट मैनेजर है। केशवचन्द्र का दूसरा बेटा किशन बहुत रंगीन तबीयत का व्यक्ति है। फैशन परस्त और शौकीन स्वभाव का यह नवयुवक पढ़ाई में बहुत कम ध्यान देता है। दोस्तों के साथ घूमना–फिरना, पैसा बर्बाद करना और फिल्मों पर विशेष ध्यान देना इसका स्वभाव है। कई बार फेल भी हो चुका है। केशव की एक बेटी है माया, जो पढ़ने में ठीक है परन्तु उसकी ज्यादा रुचि स्कूल में होने वाले नाटकों में है। वह भी अपने भाई किशन की तरह फिल्मों में काम करने के सपने देखती है। इसी अध्याय में लेखक ने परिवार पर आने वाली विपत्ति का संकेत दिया है, जिसमें मोहन की नौकरी छूट जाती है।

सातवें अध्याय में मोहन नौकरी की तलाश में भटकता है और कलकत्ता चला जाता है। कहीं भी नौकरी न मिलने के गम में वह सख्त बीमार पड़ जाता है। किशन हीरो बनने के सपने देखता है और बम्बई चला जाता है। वहां से वह अपने माता–पिता को पत्र लिखकर बताता है कि वह जल्द ही एक कामयाब अभिनेता बन जाएगा। केशवचन्द्र को उसकी ऐसी बातें पसन्द नहीं हैं परन्तु कभी–कभी वे सोचते हैं कि यदि किशन सफल हो जाए तो परिवार की भी कुछ मदद करेगा। सुशीला अपने पति मोहन की जी–जान से सेवा करती हैं डॉक्टर के अनुसार मोहन को टी.बी. हो गई है, जिसके लिए उसे पहाड़ी इलाके में किसी सेनिटोरियम में रखना होगा।

अष्टम अध्याय में लेखक ने एक ही घटना का उल्लेख किया है कि सुधा माया के लिए विवाह का प्रस्ताव लाती है। लड़का दुहाजू है और तीन बच्चों का बाप है, परन्तु बहुत पैसे वाला है। माया पढ़ी–लिखी समझदार नवयुवती है, वह इस रिश्ते के लिए इन्कार कर देती है। माता–पिता के समझाने पर भी वह राज़ी नहीं होती।

मोहन की बीमारी बढ़ती जाती है। सुशीला उसे किसी सेनीटोरियम में नहीं रखना चाहती और उसके इलाज के लिए घर में पैसा नहीं है। वह अपने सारे ज़ेवर बेच कर मोहन को अल्मोड़ा ले जाती है। वह अपने ससुर को कहती है कि वह अपनी सेवा से मोहन को ज़रूर बचा लेगी। अल्मोड़ा जाकर मोहन स्वस्थ होने लगता है।

इस अध्याय में लेखक ने अल्मोड़ा के पहाड़ी क्षेत्र का वर्णन किया है, जहां के ठण्डे वातावरण में मोहन ठीक होने लगता है। केशव चन्द्र को इस बात पर बड़ा गर्व है कि उसकी बहु सुशीला ने त्याग एवं सेवा भाव से उनके बेटे की जान बचा ली है।

इस अध्याय में माया अपनी एक सहेली रानी के साथ किशन के पास बम्बई चली जाती है। यह दोनों घर में बिना बताए गई थी, जिससे केशवचन्द्र बहुत नाराज़ होते हैं। सुशीला काफी लम्बे समय तक मोहन को अल्मोड़ा में रखती है, किन्तु वर्षा आरम्भ होने के कारण उसे वापिस कानपुर आना पड़ता है। अब तक उसके पास रुपए भी नहीं बचते। डॉक्टर मोहन का इलाज एक महीना और चलाने की सलाह देता है, परन्तु केशवचन्द्र के पास रुपए नहीं हैं। किशन बम्बई में अच्छा कारोबार चला लेता है और हीरो बनकर रुपया भी कमाता है, परन्तु पिता की कोई मदद नहीं करता। केशवचन्द्र जिस कम्पनी में काम करते हैं, वहाँ के मालिक को उनकी ईमानदारी पर बहुत भरोसा है। केशवचन्द्र उस कम्पनी के लिए माल की खरीदारी करते हैं और हर काम पूरी ईमानदारी से करते हैं। उस कम्पनी में माल देने वाला एक व्यापारी राम किशोर यह जानता है कि केशव को मोहन की बीमारी के लिए रुपया चाहिए। इसलिए वह घटिया माल देकर केशवचन्द्र द्वारा पास करवाना चाहता है। इसके लिए वह उन्हें एक हज़ार रुपया रिश्वत देता है। केशवचन्द्र परिस्थितियों से विवश होकर यह रुपया ले लेते हैं, परन्तु उसे खर्च नहीं कर पाते। उन्हें लगता है कि रिश्वत लेकर उन्होंने महा पाप किया है। उनके मन पर इतना बोझ पड़ जाता है कि वह दिन–रात बेचैन रहने लगते हैं।

केशवचन्द्र इतने अधिक चिन्तित रहने लगते हैं कि उनकी भूख–प्यास और नींद खत्म हो जाती है। एक दिन उनकी कम्पनी का मालिक उन्हें एक अन्य कर्मचारी रामअधार के बारे में बताता है कि वह लोगों से रिश्वत लेकर हेरा–फेरी करता है। वह केशवचन्द्र को इस बारे में पूछताछ करने को कहता है किन्तु केशवचन्द्र पूरे विश्वास के साथ रामअधार के निर्दोष होने का समर्थन करता है। उसके मन पर इस बात का बोझ निरन्तर बढ़ता जाता है कि उसने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया है और वह उन रुपयों को खर्च नहीं कर पाता। इसी बीच रामअधार केशवचन्द्र के पास आता है और उसे बताता है कि उसने रामकिशोर से अपने सारे सम्बन्ध तोड़ दिए हैं क्योंकि वह उसे रिश्वत देना चाहता था। वह यह भी बताता है कि रामकिशोर का यह कहना भी उसे बुरा लगा कि बाबू केशवचन्द्र भी रिश्वत लेते हैं। रामअधार की बात सुनकर केश्व सन्नाटे में आ जाता है। अपनी बेचैनी को दूर करने के लिए वह अलमारी में से एक हज़ार रुपया निकाल कर अपने मालिक के सामने रख देता है। वह यह मान लेता है कि उसने रिश्वत ली है और इस पाप के लिए वह कोई भी सज़ा भुगतने को तैयार है।

मालिक केशवचन्द्र की बात सुन हैरान रह जाता है। वह कहता है कि इन रुपयों को कम्पनी के किसी हिसाब में नहीं डाला जा सकता। वह केशवचन्द्र से इस गल्ती का प्रायश्चित करने के लिए नौकरी–से त्याग–पत्र देने को कहता है। केशवचन्द्र त्याग–पत्र दे देते हैं और घर की तरफ चल पड़ते हैं। रास्ते भर वह सोचते हैं कि इन रुपयों का वे क्या करेंगे, रास्ते में एक अनाथालय आता है, वहाँ वह रुपए दान करना चाहते हैं। सोच–विचार में डूबे वे घर आते हैं, वो स्वयं को दोषी मानते हैं। उनके मन में विचार आता है कि उनकी बहू सुशीला उनसे कहीं महान् है, जिसने अपने ज़ेवर बेचकर अपने पति की जान बचाई। अब वह एक बच्चे को ट्यूशन पढ़ा कर जो कुछ कमाती है, वह भी पति की सेवा में खर्च करती है। उसके मन पर कोई बोझ नहीं है क्योंकि उसने कभी पाप की कमाई नहीं की। थके पांवों और टूटे मन से केशवचन्द्र घर पहुंच कर दीवान पर लेट जाते हैं। इतने में पोस्टमैन एक रजिस्ट्री लेकर आता है, जिसमें किशन और माया उन्हें पन्द्रह सौ रुपए भेजते हैं। केशवचन्द्र बहुत प्रसन्न होता है। उनका मन हल्का हो जाता है, परन्तु उन्हें लगता है कि उनके पैर अभी भी लड़खड़ा रहे हैं और वे थके पांवों से आगे बढ़ रहे हैं।

2.2.3 कथावस्तु की समीक्षा

इस उपन्यास की कथावस्तु बड़े सहज एवं स्वाभाविक ढंग से आरम्भ होकर विकसित होती है। इसमें एक

परिवार के प्रमुख सदस्य केशवचन्द्र की यौवन से बुढ़ापे तक की कहानी है। यह एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें एक परिवार के सुख–दुःख की गाथा को बड़े स्वाभाविक ढंग से चित्रित किया गया है। केशवचन्द्र जीवन के विभिन्न संघर्षों में से गुजरते हुए बूढ़े हो गए हैं। जीवन यात्रा में चलते–चलते उनके पैर थक गए हैं और वह स्वयं को थके–टूटे हुए अनुभव करते हैं। केशवचन्द्र एक आदर्श व्यक्ति हैं। उन्होंने अपना जीवन आदर्शों एवं नियमों का पालन करते हुए बिताया है। उन्हें आर्थिक तंगियां सहन करनी पड़ी परन्तु वे अपने असूलों को नहीं छोड़ सके।

लेखक ने इस उपन्यास में जिन घटनाओं का वर्णन किया है, वे सामान्य जीवन की साधारण और यथार्थ घटनाएं हैं। इसमें कुछ भी काल्पनिक नहीं है। उपन्यास की रचना लेखक ने बड़े मनोयोग से की है और बड़े सुरुचिपूर्ण ढंग से एक सामान्य व्यक्ति के जीवन की गाथा कही है। उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध उस समय से है, जब चालीस–पचास रुपए आय वाली नौकरी को बहुत बड़ी समझा जाता था और जब पाँच हज़ार दहेज देने से अच्छे घरों में बच्चों की शादी हो जाती थी। पाँच हज़ार में बढ़िया मकान खरीदा जा सकता था। एक हज़ार रुपए की रिश्वत बहुत बड़ी रकम समझी जाती थी। इसके साथ ही लेखक ने आज से साठ–सत्तर वर्ष पहले की सामाजिक मान्यताओं का वर्णन भी किया है। सुशीला एवं माधुरी जैसी स्त्रियों के माध्यम से एक भारतीय आदर्श पत्नी का चित्रण भी किया है, जो परिवार के सुख में अपना सुख मानती है और पति की सेवा के लिए सर्वस्व त्याग सकती हैं।

'थके पांव' उपन्यास पूर्व दीष्टि (फलैश बैक) पद्धति में लिखा गया है। पहले अध्याय में केशवचन्द्र एक बूढ़े के रूप में आया है, जो जीवन पर्यन्त चलते–चलते थक गया है और उसके पैर दर्द एवं थकान से लड़खड़ा गए हैं। दीवान पर लेटा हुआ वह अपनी बीती ज़िन्दगी को याद करता है। उसका पूरा जीवन एक रील की तरह उसकी आँखों के सामने से गुजरता है, जिससे उपन्यास की कथावस्तु विकसित होती है। अन्तिम अध्याय केशवचन्द्र की वर्तमान ज़िन्दगी से जुड़ जाता है, जब वह उठकर अनाथालय की ओर बढ़ता है। सारी कथा मुख्य पात्र केशवचन्द्र के मुख से कही गई जान पड़ती है। लेखक ने बड़े स्वाभाविक ढंग से केशवचन्द्र के जीवन की गाथा को प्रस्तुत करते हुए इस यथार्थवादी उपन्यास की रचना की है।

2.2.4 सारांश

'थके पांव' भगवती चरण वर्मा की एक सुन्दर कृति है, जिसमें एक साधारण व्यक्ति के जीवन की कहानी अत्यन्त स्वाभाविक एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत की गई है। इस कथा के माध्यम से लेखक ने जीवन के एक सत्य का प्रतिपादन किया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन काल में विभिन्न परिस्थितियों में से गुज़रता है। अपने यौवन काल में वह दौड़–धूप करने में सक्ष्म होता है और कभी थकता नहीं है। ज्यों–ज्यों आयु बढ़ती है, मनुष्य में साहस एवं इच्छाएं कम होती जाती हैं और शरीर में बल कम होने लगता है। जीवन यात्रा के लम्बे रास्ते तय करता व्यक्ति सुख–दुख के विभिन्न पड़ावों को पार करता हुआ अन्त में बहुत थक जाता है। उसके मन की खुशी समाप्त होने लगती है और वह स्वयं को थका हारा एवं टूटा हुआ महसूस करता है। इस सत्य का उद्घाटन करते हुए लेखक ने बड़ी स्वाभाविक भावपूर्ण एवं प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास आज से साठ–सत्तर वर्ष पहले के भारतीय परिवारों की झांकी प्रस्तुत करता है, जिसमें लोग कुछ जीवन मूल्यों को लेकर जीवन जीते थे और साधारण जीवन व्यतीत करते हुए पाप–पुण्य में विश्वास रखते थे। मुख्य रूप से लेखक का उद्देश्य यह स्पष्ट करता है कि समय एवं परिस्थिति के अनुसार मनुष्य के जीवन में विभिन्न परिवर्तन आते हैं। जीवन के लम्बी राह का पथिक मनुष्य अपने अन्तिम दिनों में थक कर लड़खड़ा जाता है। इसी मुख्य भाव के आधार पर लेखक ने इस उपन्यास का नामकरण किया है, जो अत्यन्त स्वाभाविक और सटीक है।

2.2.5 बोध-प्रश्न

1. केशवचन्द्र के पिता का क्या नाम था? वे क्या काम करते थे?
2. केशवचन्द्र को नौकरी ढूंढते समय किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा ?
3. केश्वचन्द्र के पिता ने उनका विवाह जल्दी क्यों किया?
4. केशवचन्द्र की पत्नी का क्या नाम था?
5. सुधा कौन थी? उसका विवाह किसके साथ हुआ?
6. मोहन उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी बड़ा अफ़सर क्यों नहीं बन सका?
7. मोहन की बीमारी का क्या कारण था?
8. सुशीला ने मोहन की किस प्रकार सेवा की?
9. केशवचन्द्र रिश्वत क्यों नहीं लेना चाहते थे?
10. केशवचन्द्र ने रिश्वत लेने के पाप का प्रायश्चित किस प्रकार किया?

(इन प्रश्नों के उत्तर भेजे गए पाठ में से ढूंढें और इन्हें लघु प्रश्नों के रूप में तैयार करें।)

पाठ संख्या : 2.3 **लेखिका : डॉ. हरिसिमरन कौर**

'थके पांव' चरित्र-चित्रण

रूप-रेखा

2.3.0 उद्देश्य

2.3.1 प्रस्तावना

2.3.2 'थके पांव' उपन्यास में चरित्र–चित्रण

2.3.3 सारांश

2.3.4 बोध प्रश्न

2.3.0 उद्देश्य

इस पाठ में 'थके पांव' उपन्यास में आए पात्रों का चरित्र–चित्रण करेंगे। उपन्यास की कथावस्तु मुख्य पात्र केशवचन्द्र के जीवन से सम्बन्धित है, किन्तु अन्य पात्र भी अपना महत्त्व रखते हैं। केशवचन्द्र के परिवार एवं उसकी विभिन्न गतिविधियों का चित्रण करते हुए लेखक ने अन्य पात्रों को भी प्रस्तुत किया है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- केशवचन्द्र के चरित्र के विशेष गुणों से परिचित हो सकेंगे;
- केशवचन्द्र के परिवार के सदस्यों के चारित्रिक गुणों से परिचित हो सकेंगे;
- भारतीय समाज के मध्यवर्गीय पात्रों के चरित्र की विशिष्टताओं को जान सकेंगे;
- उपन्यास में आए पात्रों के माध्यम से मानव स्वभाव की दुर्बलताओं से भी परिचित हो पाएंगे।

2.3.1 प्रस्तावना

प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव में कुछ गुण एवं कुछ दुर्बलताएं पाई जाती हैं, जिनके आधार पर उसका चरित्र बनता है। किसी कहानी या उपन्यास में आए पात्रों का अपना एक विशिष्ट स्वरूप होता है। यह स्वरूप उन्हें एक दूसरे से भिन्न करता है। 'थके पांव' उपन्यास में लेखक ने एक मध्यवर्गीय परिवार की साधारण–सी ज़िन्दगी का वर्णन करते हुए लगभग बीस पात्रों का परिचय दिया है। इनमें से केशवचन्द्र, मोहन, किशन, माधुरी और सुशीला प्रमुख पात्र कहे जा सकते हैं। शेष सभी पात्र गौण हैं। मुख्य पात्रों के चरित्र का विश्लेषण यहाँ किया जाएगा।

2.3.2 'थके पांव' उपन्यास में चरित्र-चित्रण

उपन्यास में कई पात्र हैं, जिनमें प्रमुख हैं बाबू केशवचन्द्र। सबसे पहले हम उनके चरित्र का विश्लेषण करेंगे।

I. केशवचन्द्र

केशवचन्द्र 'थके पांव' उपन्यास के केन्द्रिय पात्र हैं और उपन्यास की कथावस्तु उन्हीं के जीवन पर आधारित है। केशव अपने बीते हुए समय को याद करते हैं और उसके वर्णन में अन्य पात्र केशव के व्यक्तित्व को पुष्ट करते हैं। लेखक ने केशव को एक साधारण एवं सहज मानव के रूप में प्रस्तुत किया है। मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे और पले केशव के चरित्र में गुण एवं दोष दोनों ही हैं। वह अपनी कमज़ोरियों से लड़ता है और उनसे सीखता है। वह गल्तियां भी करता है, परन्तु साथ ही अपने आदर्शों की ओर उन्मुख रहता है। केशव के चरित्र के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :

1. **उच्च आदर्शों का समर्थक :-** केशव एक अच्छे परिवार का व्यक्ति है, जिसके पिता रामचन्द्र सदा सत्य और ईमानदारी की राह पर चले। वह अपने पिता को याद करते हुए उनके बताए आदर्शों पर चलने के लिए तत्पर है। झूठ बोलना, चोरी करना, रिश्वत लेना एवं रिश्वत के पैसे से अपनी अमीरी का प्रदर्शन उसे पसन्द नहीं है। एक मामूली से कल्र्क की नौकरी करके उसने अपने परिवार का पालन पोषण किया परन्तु कभी भी रिश्वत नहीं ली। अपनी युवावस्था में पढ़ाई करने के बाद उसे बहुत दौड़–धूप करके नौकरी ढूंढनी पड़ी। इसी दौरान उसने दफ्तरों में होने वाले भ्रष्टाचार को अपनी आँखों से देखा और उसके प्रति वितृष्णा जाहिर की। अपनी बहन के ससुराल वालों को वह इसलिए पसन्द नहीं करता क्योंकि वे लोग रिश्वत के पैसे से अमीर हैं। उनकी अभिमान भरी बातें उसे निराश करती हैं। उसका यह आदर्श है कि रिश्वत पाप की कमाई है, उपन्यास के अन्त में भी स्पष्ट होता है कि जब वह बहुत मज़बूरी की हालत में एक हज़ार रुपए रिश्वत लेता है तो इस पैसे को भी वह खर्च नहीं कर पाता। यह दुष्कर्म उसके लिए बोझ बन जाता है और वह बार–बार स्वयं को धिकारता है। अन्त में वह इन रुपयों को एक अनाथालय में दान कर देता है।

2. **सादा स्वभाव :-** केशव बड़े सादे स्वभाव के व्यक्ति हैं। वह अपने परिवार के साथ बड़े साधारण ढंग से रहते हैं। उन्हें अपने माता–पिता से स्नेह है। माँ की बीमारी को देखकर वह माधुरी से विवाह कर लेते हैं। वह जो कुछ कमाते हैं, उसे भाई बहनों व परिवार पर खर्च कर देते हैं। रूखी–सूखी खाकर ईश्वर में श्रद्धा एवं विश्वास रखने वाले केशवचन्द्र में आत्म–संतोष एवं सब्र है। उपन्यास की कथा वस्तु में वह कहीं भी कोई इच्छा प्रकट नहीं करते। जो कुछ उनके पास है, उसी में वे खुश है। जब उनका बेटा किशन बम्बई जाकर हीरो बनता है और उन्हें अपनी कोठी, गाड़ी, कीमती वस्त्र एवं अन्य ऐश्वर्य की वस्तुओं के बारे में बताता है तो वे सोचते हैं कि इन चीजों पर पैसा खर्च करने की उपेक्षा यदि वह अपने परिवार की आवश्यकताएं पूरी करता तो अधिक अच्छा होता। केशव परिवार के मुखिया हैं। उपन्यास की कथावस्तु से स्पष्ट होता है कि मुखिया होने के बाद भी वे परिवार के किसी सदस्य से बुरा व्यवहार नहीं करते। किशन के बम्बई जाने पर वे नाराज़ होते हैं, परन्तु जब वह उनसे मिलने आता है तो प्रसन्न हो जाते हैं।

केशव स्वभाव के विनम्र एवं दयालु हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति सहानुभूति एवं प्रेम रखना उनका स्वभाव है। पत्नी से भी उन्हें स्नेह है। वे जानते हैं कि उनकी पत्नी माधुरी उनके परिवार की शुभचिन्तक है। कठिनाई के दिनों में वह उनकी सहायता करती है। इस बात पर सदा उन्हें खुशी का अनुभव होता है। पुत्र मोहन की बीमारी की वे बहुत चिन्ता करते हैं और अपनी पुत्रवधू सुशीला के त्याग एवं सेवा–भाव की सराहना करते हैं।

3. **मेहनती एवं ईमानदार :-** केशव स्वभाव से मेहनती हैं। वे अपनी नौकरी बड़ी मेहनत एवं ईमानदारी से करते हैं। उनकी कम्पनी का मालिक एवं सभी कर्मचारी केशव का इसलिए सम्मान करते हैं कि वे भरोसेमन्द व नेक कर्मचारी हैं। समय पर दफ्तर पहुंचना और सबसे बाद दफ्तर से जाना उनका स्वभाव है। यही कारण

है कि उन्हें दफ्तर में बहुत जल्दी तरक्की भी मिली है। कम्पनी में काम करने वाला उनका एक सहयोगी उनके बारे में कहता है – जी! नमकहलाली का सबक अगर किसी ने लेना हो तो बाबू केशवचन्द्र साहब से ले। ....बाबू केशवचन्द्र एक–एक कागज़ उलट–पुलट कर देखेंगे, बाल की खाल निकालेंगे। एक अन्य कर्मचारी केशवचन्द्र से कहता है – "आप जैसे आदमी का सुमार भी वह बेईमानों में करें........... ऐसे आदमी के यहाँ काम करना पाप है।" केशवचन्द्र अपनी पूरी आयु बड़ी समझदारी एवं कड़ी मेहनत करके अपने परिवार को पालते रहे।

4. समझदार :- केशव काफी समझदार व्यक्ति हैं। परिस्थितियों के अनुसार फैसला लेना उनके स्वभाव की विशेषता है। वह अपने बेटे का विवाह जल्दी न करके उसे पढ़ाकर बड़ा अफसर बनाना चाहता है। बिहारीलाल अपनी बेटी का विवाह मोहन से करना चाहते हैं और दहेज में पाँच हज़ार रुपया देना चाहते हैं। यह जानकर केशव मोहन के विवाह के लिए राज़ी हो जाते हैं। यह फैसला वे परिवार की भलाई के लिए करते हैं और पाँच हज़ार रुपए से एक बढ़िया मकान खरीदते हैं।

5. गल्ती पर पछताने वाला :- उपन्यास की कथावस्तु में केशव ने अपना जीवन अत्यन्त साधारण तरीके से व्यतीत किया है और आदर्शों का त्याग नहीं किया। कथा के अन्त में वे परिस्थितियों से मज़बूर होकर केवल एक बार रिश्वत लेते हैं जो उनके लिए बोझ बन जाती है। वे बार–बार स्वयं को कोसते हैं। उनकी अन्तरात्मा से आवाज़ उठती है और वह यह रुपया अनाथालय में देना चाहते हैं – "उसके अन्दर से किसी ने कहा – यह पाप का रुपया तुम यहाँ दे दो, इसी में तुम्हारा कल्याण है।" इस बात से स्पष्ट है कि केशव का चरित्र बहुत महान् है क्योंकि वह कोई भी गल्त काम करके उसके लिए पछताता है और उसका प्रायश्चित भी करता है।

II. रामचन्द्र

रामचन्द्र केशव के पिता हैं, जो एक कम्पनी में बाबू (कर्ल्क) की नौकरी करते थे। उन्हें केवल पचास रुपए वेतन मिलता था। केशव अपने बीते जीवन को याद करते हुए पिता का परिचय इस प्रकार देता है – "उसके पिता का नाम रामचन्द्र था और वह कानपुर की एंड्रज कम्पनी में छोटे बाबू थे। छोटे बाबू से मतलब साधारण कर्ल्क से था, जो सुबह से शाम तक लाखों–करोड़ों रुपयों के कारोबार में हिस्सा बांटता था, यानी उनके कागज़ रखता था, उनका हिसाब रखता था, उस सम्बन्ध में चिट्ठी–पत्री लिखता था लेकिन जिसे महीने के अन्त में पचास रुपए मिलते थे। उन दिनों पचास रुपए में गृहस्थी बड़े मजे से चलती थी, लड़कों की पढ़ाई–लिखाई होती थी, दावतें–तवाज़े भी हो जाया करते थे।" रामचन्द्र के चरित्र की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. सदगुणों वाले :- रामचन्द्र अत्यन्त शान्त, संयत एवं आचार–विचार के प्रति आस्था रखने वाले व्यक्ति हैं। उनका जीवन बहुत सादा है। सुबह दफ्तर जाना, शाम को लौटकर अपने बाल–बच्चों में जी बहलाना उनका स्वभाव है। उनमें दया, सहानुभूति एवं संवेदना के भाव पर्याप्त मात्रा में थे। वह अच्छी तरह रहने, अच्छा खाना–खाने और अपनी सन्तान को सुखी एवं समृद्ध देखने में विश्वास रखते हैं। हर परिस्थिति में खुश रहना रामचन्द्र का स्वभाव है।

2. चंचल स्वभाव :- बाबू रामचन्द्र स्वभाव के चंचल हैं। घर में छोटी–छोटी बातों में मित्रों को दावत देना उनका स्वभाव है। दफ्तर में काम करने वाले सहयोगियों को बुलाकर खिलाना–पिलाना उन्हें रूचिकर लगता है। पत्नी द्वारा विरोध करने पर भी वे मानते नहीं हैं।

3. समझदार :- रामचन्द्र दुनियादारी के मामलों में समझदार हैं। वह अपनी बेटी सुधा के विवाह में तीन हज़ार का दहेज देना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें अपने बेटे केशव के विवाह में इतना ही दहेज मिला था। सुधा के ससुराल वालों से वे चार हज़ार का दहेज तय करते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में वे लोग–हैसियत वाले हैं। केशव द्वारा विरोध करने पर कि वे लोग हैसियत वाले रिश्वत के पैसे से बने हैं, वे उसे समझाते हैं – "तुम नहीं समझोगे केशव, अभी नौजवान हो, ज़िन्दगी की ठोकरें नहीं खाई हैं।" केशव उनसे कहता है कि वह रुपयों का प्रबन्ध करेगा। यह सुनकर वह गद्‌गद् हो उठते हैं – शाबास बेटा, तुम से मुझे बड़ी उम्मीदें हैं, उन्हीं उम्मीदों के साथ मैंने तुम्हें पढ़ाया–लिखाया है।"

4. आदर्श व्यक्ति :- बाबू रामचन्द्र आदर्श गृहस्थी हैं। वे अपने पिता का श्राद्ध बढ़ी श्रद्धा से करते हैं और ब्राह्मण भोजन करवाते हैं। वे एक अच्छे पति भी हैं और पत्नी के साथ उनके अच्छे सम्बन्ध हैं। रामचन्द्र एक अच्छे पिता हैं। उन्हें अपनी संतान के पालन–पोषण का बहुत ध्यान है, बेटी के विवाह की चिन्ता है और लड़कों को पढ़ा कर ऑफिसर बनाना चाहते हैं। बेटे को सुधा के ससुराल तिलक देकर भेजते हुए वे उसे समझाते हैं कि वहां जाकर बहन के घर का कुछ ना खाए – "उनके घर का पानी न पीना, न खाना खाना। तिलक लगाकर सीधे स्टेशन चले आना, वहीं सो रहना और खाना किसी हलवाई की दुकान पर खा लेना। ......कितना भी इसरार करें खाना किसी हालत में भी न खाना वहाँ पर। वैसे जमाना बदल रहा है, पर जब तक निभता चले निभाए जाना चाहिए; क्यों किसी को उंगली उठाने का मौका दिया जाए।"

III. माधुरी

माधुरी केशवचन्द्र की पत्नी है, जो बड़ी छोटी आयु में केशव के साथ ब्याह दी गई है। वह घर का सारा काम–काज करती है, क्योंकि केशव की माँ बीमार रहती है। केशव अपने बीते समय को याद करता माधुरी के साथ व्यतीत किए जीवन को भी याद करता है। उसे अपनी युवावस्था के दिन याद आते हैं – "विवाह हुए करीब तीस–बत्तीस वर्ष हो चुके, पर माधुरी से प्रथम मिलन की याद उसे अवश्य है ....किशोरावस्था, कौतूहल और युवावस्था का वसा" माधुरी के चारित्रिक गुणों को इस प्रकार आंका जा सकता है :–

1. सुन्दर आकर्षक युवती :- माधुरी अपनी युवावस्था में सुन्दर एवं आकर्षक युवती थी। जिसके विषय में लेखक ने कहा है – "एक समय वह युवा थी, उसमें आकर्षण था, उसमें रस था और इस सबके साथ उसके अन्दर भोलेपन से भरा हुआ एक विश्वास था। विश्वास आज भी माधुरी में है, लेकिन भोलापन गायब हो गया है । उसे देवता पर विश्वास है, उसे अपने पति पर विश्वास है, उसे अपनी संतान पर विश्वास है और इसी विश्वास के सहारे वह जिन्दा है।"

2. धार्मिक विचारों वाली स्त्री :- माधुरी ईश्वर में अखण्ड विश्वास रखती है और पूजा–पाठ करती है। वह नियमपूर्वक पूजा करती है और समझती है कि देवी–देवता उसे सहारा दे सकते हैं। वह हनुमान जी की भक्त है। हनुमान चालिसा का पाठ करती है और उनके मंदिर में प्रसाद चढ़ाती है। अपने हाथ से बेसन के लड्डू बनाकर मंदिर में प्रसाद चढ़ाने जाती है।

3. पतिव्रता :- माधुरी केशव को पति परमेश्वर मानती है और उसकी तथा उसके परिवार की सेवा बड़े त्याग भाव से करती है। जब भी केशव किसी कष्ट में होता है, अपनी जमा पूंजी लाकर उसके सामने रख देती है। सुधा के विवाह के समय संकट आने पर वह अपने पास रखे दो सौ रुपए ला कर देती है – "मेरे लाला जी ने मुझे चुपके से दो सौ रुपए दिए थे, कहा था किसी से न बताना, सो वह मेरे पास हैं। मुसीबत का समय है, इसलिए तुम्हें बता दिया।" केशव बहुत प्रसन्न होता है और कहता है – "मधो, तुम स्त्री नहीं,

देवी हो।" इस तरह एक बार केशव के छोटे भाई सुरेश के पास कालेज की फीस देने के लिए पैसे नहीं होते तो माधुरी अपनी सोने की माला बेच कर उसे फीस के रुपए देती है। यह सब कुछ वह इसलिए करती है कि उसका पति केशव बेरोज़गार होने के कारण अपने पिता की कोई मदद नहीं कर सकता।

4. अच्छी माँ :- माधुरी पांच बच्चों की माँ है। उसे पुत्रों से बहुत स्नेह है। मोहन पढ़ाई में बहुत होशियार है यह जानकर वह बहुत प्रसन्न होती है। वह उसका विवाह बड़ी धूम–धाम से करती है और उसे अपनी कुल–लक्ष्मी बहू पर गर्व है। उसका दूसरा बेटा किशन पढ़ाई में नालायक है और दो बार इन्टर में तथा एक बार बी.ए. में फेल हो चुका है। किशन के पिता और भाई उसे बार–बार प्रताड़ित करते रहते हैं, परन्तु माधुरी सदा उसका पक्षपात करती है। वह उसका लाडला बेटा है और वह उसकी किसी बुराई की तरफ ध्यान नहीं देती। जब किश्न दूसरी बार बी.ए. की परीक्षा में फेल होता है तो वह कहती है – "हाय राम! इस दफ़ा भी फेल हो गया, इस दफ़ा तो बड़ी मेहनत की थी बेचारे ने, दिन रात पढ़ता ही रहता था! नाश हो इन इम्तहान लेने वालों का, बड़े बेईमान हैं।" जब किशन बम्बई से कुछ रुपये मंगवाता है और यह लिखता है कि उसकी जेब कट गई है तब भी माधुरी कहती है – "नाश हो इन गिरहकटों का। बड़ी मुसीबत में पड़ा होगा। अपना ही लड़का है, कोई गैर थोड़े ही है। रुपयों का कुछ न कुछ इंतजाम तो करना ही होगा।" वह अपने सभी बच्चों से प्रेम करती है। माया तथा कम्मो की भावनाओं का ध्यान करती है और बहू सुशीला के प्रति भी स्नेह भाव रखती है। जब मोहन की नौकरी छूट जाती है तो वह कलकत्ता जाकर नौकरी नहीं करने देती। उसे विश्वास है कि मोहन को कानपुर में ही नौकरी मिल जाएगी। जब माया किशन के पास बम्बई चली जाती है तो केशवचन्द्र बहुत नाराज़ होते हैं। वे माया को समझा–बुझा कर वापिस नहीं लाना चाहते तो माधुरी उनसे कहती है – "माया डूब रही है, तुम उसके बाप हो, उसे बचाना तुम्हारा धर्म है – उसे वापिस ले आओ, माया को बचाओ।"

इसी तरह जब बाबू केशवचन्द्र अपनी बेटी माया का विवाह तीन बच्चों के बाप एक दूहाजू से करने को तैयार हो जाते हैं, तो वह इस बात का विरोध करती है – "न भाई ! एक तो लड़का दुहाजू है, फिर उसके तीन बच्चे, सौत के बच्चों को संभालना बड़ा मुश्किल होता है, बदनामी ही हाथ लगती है। माया के लिए कोई दूसरा लड़का ढूंढो।" उसे अपने बच्चों से प्रेम है। मोहन के बीमार होने पर वह अपने सौ रुपये निकाल कर दे देती है जो उसने श्रावण में मथुरा जाने के लिए संभाल कर रखे हुए थे। अपनी बहू का सेवा भाव देखकर वह प्रसन्न हो जाती है। मोहन के ठीक होने पर वह कहती है – "देख माया, बहू ने कितनी सेवा की मेरे मोहन की। उसकी ही हिम्मत थी कि मोहन की इतनी अच्छी देख–रेख हुई..... देख माया सुशीला की तरह सुगृहणी और कुल लक्ष्मी बनो।

IV. मोहन

मोहन केशवचन्द्र का सबसे बड़ा बेटा है। इसके चरित्र की विशिष्टताओं को इस प्रकार आंका जा सकता हैः

1. पढ़ाई में होशियार :- मोहन मेहनती विद्यार्थी है। वह बी.ए. पास करके पी.सी.एस. की परीक्षा में बैठता है और अड़तासीवें नम्बर पर आता है। इसके बाद वह वकालत पास करता है। इस कथा का सम्बन्ध जिस समय से है, उस समय इतनी पढ़ाई करने वाले व्यक्ति विरले ही होते थे।

2. आज्ञाकारी पुत्र :- मोहन अपने माता–पिता का बहुत आदर करता है। पिता की हर आज्ञा को चुपचाप मान लेना अपना धर्म समझता है। पढ़ाई में होशियार होने के कारण वह ऊँची शिक्षा प्राप्त करके बड़ा ऑफिसर बन सकता था, परन्तु पिता के कहने पर वह पढ़ाई के बीच में ही विवाह के लिए राज़ी हो गया।

उसने चाहकर भी पिता का विरोध नहीं किया। यदि वह विवाह के झमेले में पड़कर अपना समय बर्बाद न करता तो पी.सी.एस. पास करके किसी बड़े पद का अधिकारी बन जाता।

3. सीधे स्वभाव वाला :- मोहन स्वभाव से बहुत सीधा है। उसमें लड़कों वाली चंचलता और शरारत बिल्कुल नहीं है। लेखक ने मोहन के विषय में लिखा है – "मोहन अत्याधिक सीधा, अत्याधिक विनयी, अत्याधिक ईमानदार है। मोहन जैसे आदमी जीवन में बहुत कम सफल होते हैं।" वकालत पास करके वह वकील बन गया परन्तु उसकी वकालत चल नहीं पायी क्योंकि इस पेशे के लिए जितनी होशियारी की ज़रूरत होती है वह उसके पास नहीं थी।

4. असफल व्यक्ति :- अपने सीधेपन के कारण मोहन जीवन भर असफल रहा। पहले वह वकालत नहीं चला पाया। इसके बाद वह एक कम्पनी में बड़ा बाबू बन गया परन्तु बहुत जल्दी ही उसे वहाँ से भी नोटिस मिल गया। इसके बाद बहुत भाग–दौड़ करने पर भी उसे कोई काम नहीं मिल सका। उसके भाग्य ने कभी उसका साथ नहीं दिया। इस स्थिति में वह इतना गमहीन हो जाता है कि बीमार रहने लगता है और उसे टी.बी. जैसी बीमारी हो जाती है।

V. सुशीला

सुशीला मोहन की पत्नी है। वह सही अर्थों में एक भारतीय पतिव्रता स्त्री है। इसके चरित्र की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. पतिव्रता स्त्री :- सुशीला आदर्श भारतीय नारी है, जो अपने पति और उसके परिवार की त्याग भाव से सेवा करती है। ज़रूरत पड़ने पर वह घर के सदस्यों की आवश्यकतानुसार मदद भी करती रहती है।

वह अच्छे परिवार की बेटी है और उसके पिता ने पाँच हज़ार का दहेज देकर उसका विवाह किया है। ससुराल आकर वह अच्छे कपड़े और खाने को भी तरसती है, परन्तु कभी मुँह से नहीं कहती। वह जानती है कि उसका बेरोज़गार पति और वह स्वयं परिवार पर एक बोझ है, इसलिए वह जितना हो सके सेवा–भाव से काम करती है।

2. समझदार :- सुशीला पढ़ी–लिखी समझदार स्त्री है। पति के बीमार होने पर वह अपने सास–ससुर से कहती है कि वे सारी बात उस पर छोड़ दें। वह स्वयं मोहन का अच्छा इलाज करवाएगी। घर में रुपयों की कमी है; इसलिए वह किसी के सामने हाथ न फैलाकर अपने सारे जेवर बेच देती है। वह स्कूल में अध्यापिका की नौकरी करके मोहन का हाथ बंटाना चाहती है, परन्तु मोहन इसका विरोध करता है। सुशीला उसे समझाती है – "मैं कहती हूं कि इसमें हर्ज ही क्या है? आजकल स्त्रियां नौकरी करती हैं, रुपया कमाती हैं, आर्थिक संघर्ष में परिवार का हाथ बंटाती हैं। तुम अपनी नौकरी छोड़ आराम करो और इसी बीच में कोई अच्छी नौकरी ढूंढो। जब तुम आर्थिक दृष्टि से सुव्यवस्थित हो जाओगे तब मैं यह नौकरी छोड़ दूंगी।" जब डॉक्टर बताता है कि मोहन को टी.बी. हो गई है तो उसके पिता कहते हैं कि घर में राजरोग आ गया है, अब भगवान् ही मालिक है। सुशीला उत्तर में कहती है – "बाबू जी, भगवान् पर सब कुछ छोड़ने से तो काम नहीं चलता। डॉक्टर साहब कह गए हैं कि इलाज से बीमारी अच्छी हो जाएगी, आदमी के हाथ में इलाज करना है।" डॉक्टर मोहन को किसी सरकारी सेनीटोरियम में रखने की सलाह देता है। मोहन के माता–पिता भी इस बात के लिए राज़ी होते हैं, क्योंकि प्राईवेट इलाज पर तो हज़ारों रुपये खर्च होने की संभावना है। इस स्थिति में सुशीला समझदारी से काम लेती है और अपने गहने सास के सामने रख कर कहती है – "अम्मा जी यह सेनीटोरियम में किसी हालत में नहीं रहेंगे। जहां तक इनके इलाज का सवाल या इलाज पर होने

वाले खर्च का सवाल है तो यह मेरे गहनों का डिब्बा है। बाबू जी गहना चाहे बेच दें – मेरे पिता जी का कहना है कि पाँच–छः सौ के गहने दिए थे उन्होंने। फिर आप लोगों ने भी दिए हैं। आखिर यह गहने मुसीबत के समय के लिए ही हैं न।"

3. स्वाभिमानी एवं दृढ़निश्चय वाली :- सुशीला स्वाभिमानी स्त्री है। वह अपने पति के लिए सब कुछ करने का साहस रखती है। मोहन को पहाड़ पर ले जाने की समस्या को वह स्वयं ही सुलझा लेती है और मोहन के पिता से कहती है – "मैं अकेली सब कुछ कर लूँगी..... आप विश्वास रखिए। समय पड़ने पर स्त्री सब कुछ कर सकती है। इतनी शिक्षा पाई है मैंने, किस दिन के लिए? "आप मुझे एक हज़ार रुपए ला दीजिए, इसके बाद की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर।" वह मोहन को अल्मोड़ा ले जाती है। उसे कीमती भोजन एवं ज़रूरी दवा–दारू देती है और वह स्वस्थ हो जाता है।

मोहन की बीमारी का इलाज करवाने के लिए वह अपने बाकी के जेवर भी बेच देती है और फिर एक महिला कॉलेज में सौ रुपए महीने वेतन पर नौकरी करती है। डॉक्टर मोहन का इलाज जारी रखने की सलाह देता है तो वह अपने ससुर से घर गहने रख कर कर्ज़ा लाने को कहती है, तब जो मोहन का इलाज ठीक तरह से पूरा हो सके – "बाबू जी, जिस तरह हो यह कर दीजिए। मुझे महिला कॉलेज में सौ रुपए महीना वेतन की नौकरी मिल रही है, मैं साल भर में यह कर्ज़ अदा कर दूँगी। कहीं से कर्ज़ ला दीजिए। सुशीला के सुसर इसका बहुत सम्मान करते हैं और अक्सर उसके बारे में सोचते हुए उसके प्रति अच्छे विचार व्यक्त करते हैं – "मोहन का इलाज चल रहा है, बिना किसी बाधा के। मोहन के इलाज का भार सुशीला पर है और वह बड़े साहस और धैर्य के साथ मोहन का इलाज कर रही है। सुशीला रोज़ अपने स्कूल जाती है पढ़ाने के लिए, रोज़ समय पर वापिस आती है। नियमित रूप से मोहन को दवा देती है, नियमित रूप से मोहन का पथ्य तैयार करती है। इस सबके साथ वह हंसती है। प्रसन्न रहती है। वह सब क्यों? केशव ने न जाने कितनी बार अपने से ही यह प्रश्न किया है। एक ही उत्तर मिला है केशव को बार–बार....... सुशीला अकलुष है, निष्कलंक है।"

VI. किशन

किशन केशवचन्द्र का दूसरा बेटा है। यह बड़े भाई मोहन से बिल्कुल विपरीत है। इसके चरित्र की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

1. चंचल प्रवृति का नवयुवक :- किशन स्वभाव से चंचल है। अच्छे कपड़े पहनना, दोस्तों के साथ आवारा–घूमना और सिनेमा देखना उसके शौक हैं। वह सिगरेट भी पीता है और माता–पिता का कहना नहीं मानता। वह देखने में सुन्दर, लम्बा और सुडौल युवक है, जो बड़ी गैर–जिम्मेदारी एवं लापरवाही का जीवन जीता है। उसे अपने भविष्य की कोई चिन्ता नहीं है। उसके जीवन का सिद्धान्त है – "जो कुछ सामने है, वही जीवन है और उसमें अधिक से अधिक रस लिया जाए, यह है उसका सिद्धान्त।"

2. पढ़ाई में नालायक :- किशन पढ़ाई में नालायक है। वह दो साल इन्टरमीडिएट में फेल हो चुका है और बड़ी मुश्किल से बी.ए. में पहुंचा है। बी.ए. में भी दो साल फेल होकर वह बम्बई भाग जाता है और हीरो बनने के सपने देखता है।

3. व्यवहार कुशल :- किशन बातों में बहुत चतुर है। बम्बई जाने से पहले वह माधुरी एवं सुशीला से रुपए मांग कर ले जाता है। वह माधुरी से रुपए मांगता है तो वह कहती है कि रुपए कहाँ है बम्बई जाने के लिए? वह उत्तर देता है – "वह तुम दोगी। अरे कुल सोलह रुपए तो किराया है, सोलह दूनी बत्तीस, और आठ रुपए

ऊपर के बाकी ठहरूंगा सुरेश चाचा के यहाँ, घूमूं फिरूंगा उनके मत्थे। मेरी–अच्छी–अम्मा आज शुक्रवार है, बुध के दिन जाऊँगा। लेकिन घर में किसी को खबर न होने पावे।" वह अपनी भौजी सुशीला से कहता है – "लेकिन भौजी अभी घर में किसी से न कहना कि मैं क्यों जा रहा हूँ। माता जी से भी मैंने यही कहा है कि घूमने–फिरने जा रहा हूँ। क्यों भौजी, मैं फिल्मों में हीरो बन सकता हूँ। महीना दो तो लग ही जाएगा, काम ढूंढने में कम से कम रुपए सौ तो पास में होने ही चाहिए। अब तुम्हारा ही एक सहारा है भौजी।" सुशीला से रुपए पाकर वह कहता है – "भौजी कसम खाकर कहता हूँ कि रुपया हाथ में आते ही सबसे पहले मैं तुम्हें यह रुपया वापिस करूंगा। भगवान् ने चाहा तो सौ–दो–सौ ऊपर से भेजूंगा।

4. शौकीन स्वभाव वाला :- किशन बड़ा शौकीन व्यक्ति है। उसे नये–नये ढंग के कपड़े पहनने, बाल बनवाने और सिगरेट पीने का शौक है। एक साल बाद वह बम्बई से लौटता है तो बन–ठन के आता है – "चाईना सिल्क का सूट वह पहने था। उस पर एक भड़कीली टाई थी। दो सूटकेस थे, उसके पास। एक नया होलडाल भी साथ में था। उस पर कीमती चमकीले कपड़े पहने था......... महीन तलवारनुमा मूंछें थी। सिर पर फेल्ट हैट था और मुँह से सिगरेट लगा हुआ था।" जब केशव किशन को देखता है तो हैरान रह जाता है। वह सात रंग की टैकिट, उसके नीचे गहरे कत्थई रंग की पैंट। केशव कहता है यह क्या धजा बना रखी है तुमने? तो तुम सिगरेट भी पीने लगे? किशन निधड़क होकर पिता को उत्तर देता है – "जी, फिल्म लाइन में सिगरेट तो पीनी ही पड़ती है। अगर हीरो के हाथ में कीमती सिगरेट न हो तो हीरो बेकार। और बम्बई में आजकल इसी तरह की पौशाक का फैशन है......लेटेस्ट डिज़ाइन।" जब केशव और मोहन उसे सलाह देते हैं कि वह फिजूल खर्ची बन्द करके कुछ रुपए घर भेजे तो वह स्पष्ट रूप से कहता है – मोहन भैया परिवार के प्रति मेरा जो कुछ भी कर्त्तव्य है, वह मैं जानता हूँ। लेकिन उसके पहले अपने प्रति भी मेरा कर्त्तव्य है, यह मैं कैसे भूल जाऊं। अपने को कष्ट में डालकर रहना मेरे ख्याल से सबसे बड़ी बेवकूफी है। दूसरे तुम्हें उस समय पूछ सकते हैं, जब तुम खुद अपने को पूछो।"

वह अपने पिता से वादा करके जाता है कि वह खूब मेहनत करेगा और उन्हें बम्बई जाकर पैसे भेजेगा। वह अपना वादा पूरा करता है और उसके द्वारा भेजे गए रुपए पाकर उसके पिता प्रसन्न होते हैं।

VII. माया

इस उपन्यास में माया आधुनिक स्त्री की प्रतीक है। वह बी.ए. पास है और कॉलेज में पढ़ती है। कॉलेज में होने वाले नाटक आदि कार्यक्रमों में भी भाग लेती है। इसके चरित्र के कुछ विशेष गुण इस प्रकार हैं :–

1. पढ़ाई में होशियार :- माया पढ़ाई में विशेष रुचि लेती है। उसके पिता केशवचन्द्र ने कहीं भी उसकी पढ़ाई को लेकर चिन्ता व्यक्त नहीं की, क्योंकि वह हमेशा पास हो जाती है। उसे ड्रामा आदि में अभिनय करने का शौक भी है और वह किशन के बम्बई जाने पर अपनी इच्छा भी प्रकट करती है कि वह भी फिल्मों में जाना चाहती है।

2. साधारण नवयुवती :- माया एक साधारण युवती की तरह घर में रहती है। उसे सभी सदस्यों से प्रेम है अपनी माँ, भाभी सुशीला तथा छोटे भाई–बहनों से प्रेम करती है। कभी कोई तकरार भी हो जाए तो उसे जल्दी भुला देती है। माँ तथा भाभी के साथ गृहकार्यों में रुचि लेती है। अपने भाई किशन से उसे स्नेह है और उसके बम्बई चले जाने पर वह उसके उज्जवल भविष्य की कामना करती है। वह अपने भाई मोहन से भी सहानुभूति रखती है और छोटे भाई–बहन के प्रति भी मोह व्यक्त करती है।

3. आधुनिक विचारों वाली :- माया के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह आधुनिक विचारों वाली समझदार लड़की है। उसके पिता अर्थाभाव के कारण उसका विवाह एक ऐसे व्यक्ति से करना चाहते हैं, जो पैसे वाला है, दहेज नहीं चाहता परन्तु तीन बच्चों का बाप है। यह जानकर माया पिता का विरोध करती है — "जो कुछ मैं कह रही हूँ यह ठीक है बाबू जी आपने मुझे पढ़ा–लिखा कर इन्सान बनाया है तो मेरे साथ आप मनुष्यता का व्यवहार कीजिए। मैं जानवर नहीं हूँ, जिसके साथ चाहा उसके साथ मुझे बांध दिया। मैं सम्पति नहीं हूँ कि जिसे चाहा उसे दे दिया। मुझ में भी भावना है...... मुझ में भी व्यक्तित्व है। मैं अपना हित–अहित समझ सकती हूँ।" पिता द्वारा डांटने पर वह कहती है — "आप मेरे प्राण ले लीजिए, आपको पूरा अधिकार है, क्योंकि आपने मुझे जन्म दिया है, लेकिन जो न्याय की बात है, जो सत्य है, उसे कहने से आप मुझे रोक नहीं सकते। मैं अनुचित बात नहीं कह रही हूँ। मुझे विवाह नहीं करना अन्तिम बार कहे देती हूँ।" माँ के समझाने पर वह उत्तर देती है — "अम्मा मुझे विवाह नहीं करना है। देख तो रही हूँ तुम्हारी हालत, भौजी की हालत बुआ जी की हालत। विवाह के अर्थ हैं स्त्री को नरक में ढकेल देना और इस नरक में आप लोग मुझे नहीं ढकेल सकते, मर जाना मैं उस नरक में पड़ने की अपेक्षा अधिक पसंद करूँगी।"

माँ कहती है कि माया की पढ़ाई ने ही उसकी मति मार दी है, तो इस पर वह हंस कर कहती है — "पढ़ना–लिखना बवाल मोल लेना नहीं है। अम्मा, भौजी को देख रही हो न। पढ़ी–लिखी है, तभी तो मोहन भैया को बचा सकीं। मैं तो कहती हूँ कि हमें अपनी ज़िन्दगी के रंग–ढंग बदलने चाहिए। माया एम.ए. तक पढ़ना चाहती है किन्तु परिवार में पैसे की कमी होने के कारण वह आगे पढ़ नहीं पाती।

4. साहसी :- माया स्वभाव से साहसी है। लेखक ने उसके व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लिखा है — "माया की अवस्था उन्नीस साल की थी, यौवन पूर्ण रूप से आ गया था, उसके ऊपर। उसका रंग बहुत गोरा तो नहीं था, लेकिन वह सुन्दर थी। मुहल्ले–पड़ोस के युवक किन नज़रों से उसे ताकते थे, केशव को इसका पता था। माया हृष्ट–पुष्ट थी, उसमें साहस का अभाव नहीं था। इंजीनियर सिंह के शोहदे लड़के की माया ने बीच चौराहे चप्पलों से मुरम्मत की थी, उस पर एक हंगामा सा मच गया था...... माया कॉलेज के कार्यक्रमों में बिना किसी हिचक के भाग लेती थी। वह अच्छा गाती और अच्छा अभिनय करती थी। अपने इसी साहस का परिचय माया उस समय भी देती है, जब वह घर से भाग कर अपने भाई के पास बम्बई चली जाती है और वहां अपनी मेहनत से काम ढूंढ कर, रुपए कमा कर अपने पिता को भेजती है। उसके पिता उसके इस साहस पर प्रसन्न होते हैं और अपनी मेहनती पुत्री पर गर्व अनुभव करते हैं।

2.3.3 सारांश

उपन्यास 'थके पांव' के लगभग सभी पात्रों का चरित्र–चित्रण किया जा चुका है। ये सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं और इनके चरित्र एवं स्वभाव की अलग–अलग विशेषताएं हैं। यह बड़ी सामान्य सी बात है कि एक ही परिवार के सदस्य अपनी विभिन्न आदतों के कारण एक ही छत के नीचे रहते हुए आपसी मतभेदों में जीते रहते हैं। उनके बीच का परस्पर संघर्ष जीवन को गति एवं रोचकता प्रदान करता है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आपको एक परिवार के सभी सदस्यों से भली–भांति परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ और आप उनके चरित्र संबंधी जानकारी प्राप्त कर पाए।

2.3.4 बोध प्रश्न

1. मोहन एवं किशन किसके पुत्र हैं?
2. माधुरी के चरित्र की सबसे अच्छी विशेषता क्या है?
3. इस उपन्यास की कौन–सी स्त्री पात्र सच्चे अर्थों में भारतीय नारी की प्रतीक कही जा सकती है?
4. केशवचन्द्र किस प्रकार के व्यक्ति हैं?
5. क्या माया आधुनिक विचारों की प्रतीक बनने में सफल रही?
6. इस उपन्यास के पात्रों में सबसे अच्छा पात्र आपको कौन–सा लगा?

पाठ संख्या : 2.4 लेखिका : डॉ. हरिसिमरन कौर

'थके पांव' परिवेश तथा संरचना शिल्प, प्रतिपाद्य और सप्रसंग व्याख्या

रूप-रेखा

2.4.0 उद्देश्य

2.4.1 प्रस्तावना

2.4.2 'थके पांव' उपन्यास में चित्रित परिवेश

2.4.3 संरचना शिल्प

2.4.4 'थके पाँव' का प्रतिपाद्य

2.4.5 सारांश

2.4.6 बोध प्रश्न

2.4.0 उद्देश्य

इस पाठ में हम 'थके पांव' उपन्यास में चित्रित परिवेश की चर्चा करेंगे। जिस परिवेश एवं वातावरण का चित्रण उपन्यास में किया जाता है, उससे हमें उस समय विशेष के समाज, रीति–रिवाजों एवं राजनीतिक–धार्मिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। यही कारण है कि किसी भी उपन्यास को पढ़कर हम यह जान जाते हैं कि इसकी कथावस्तु का सम्बन्ध किस समय के समाज, सभ्यता एवं जीवन से है। उपन्यास में आए पात्र एवं घटनाएं भी उस वातावरण से पूर्ण रूप से सम्बन्धित होते हैं। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि :–

- उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध किस समाज से है;
- इस समाज के रीति–रिवाज़ क्या हैं;
- इसमें आए पात्रों का रहन–सहन, खान–पान कैसा है;
- इन पात्रों का मानसिक स्वर किस प्रकार का है;
- इस समय की धार्मिक और राजनीतिक परिस्थिति किस प्रकार की है;
- इस समाज की प्रमुख समस्याएं क्या हैं।

2.4.1 प्रस्तावना

जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, समय एवं परिस्थिति के अनुसार समाज की स्थिति में परिवर्तन आते रहे हैं। मनुष्य जिस सामाजिक परिवेश में जन्म लेता है और विकसित होता है, उसका जीवन में विशेष महत्व होता है। साहित्यकार जब किसी समाज के जीवन पर साहित्यिक रचना करता है तो उसके सामाजिक परिवेश का चित्रण सहज ही हो जाता है। प्रत्येक रचना में एक समय विशेष के परिवेश का आ जाना

स्वाभाविक है। 'थके पांव' उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध एक साधारण से परिवार के जीवन की घटनाओं से है। यह कथा एक परिवार की तीन पीढ़ियों की कथा बड़े संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें तीन पीढ़ियों के सामाजिक परिवेश का बड़ा रोचक वर्णन है, जिसका विश्लेषण यहाँ किया जाएगा।

2.4.2 'थके पांव' उपन्यास में चित्रित परिवेश

'थके पांव' उपन्यास में चित्रित परिवेश को अलग–अलग शीर्षकों के अन्तर्गत रख कर आंका जा सकता है :

1. सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण :- इस उपन्यास में भगवती चरण वर्मा ने एक विशेष समय के समाज को उसकी विभिन्न परिस्थितियों के साथ चित्रित करने का सफल प्रयास किया है। मुख्य पात्र केशवचन्द्र की आयु पचास वर्ष है। अपने जीवन के बीते दिनों को याद करता वह अपने पिता के समय को याद करता है। उसके बच्चे जवान हो गए हैं, विवाहित भी हैं और कुछ बच्चे नई पीढ़ी और आधुनिक विचारों वाले हैं। उपन्यास की कथावस्तु तीन पीढ़ियों की सामाजिक परिस्थितियों का सजीव चित्रण करती है। पहली पीढ़ी के मुख्य पात्र हैं रामचन्द्र। जो केशवचन्द्र के अनुसार शान्त और संयत, आचार–विचार के प्रति आस्था रखने वाले हैं। रामचन्द्र में महत्त्वाकांक्षा नहीं थी। उनके अन्दर मानवीय दया, सहानुभूति और संवेदना के अवयव थे। बाबू रामचन्द्र उस समय से सम्बन्ध रखते हैं, जब व्यक्ति का जीवन अत्यन्त सादा था। उसकी ज़रूरतें बड़ी कम थी, इसलिए धन के लिए भटकन भी नहीं थी। रुपये की बहुत कीमत थी, इसलिए लोग थोड़ी आय में ही सन्तुष्ट रहते थे। रामचन्द्र अच्छी तरह रहने में विश्वास रखते थे, अच्छा खाने में विश्वास करते थे। अपनी सन्तान को सुखी और समृद्ध देखना चाहते थे। पचास रुपये महीने में वह यह सब कर लेते थे।

केशवचन्द्र दूसरी पीढ़ी के प्रमुख पात्र हैं और उस समय में जीवन व्यतीत करते हैं, जब रुपयेकी कीमत कम हो गई है। वे भी दफ्तर में बाबू हैं और एक सौ बीस रुपये आय पाकर भी जीवन भर तंगी सहते रहे। उन्हें कई बार रिश्वत लेने के मौके मिले पर वह अपने आदर्शों को नहीं छोड़ पाए। तीसरी पीढ़ी का मुख्य पात्र किशन माना जा सकता है, जिसके लिए रुपया पैसा सबसे बड़ी चीज़ है। वह किसी आदर्श नियम को नहीं मानता, केवल पैसा कमाना चाहता है ताकि जीवन के सभी सुख प्राप्त कर सके। इन तीन पीढ़ियों के माध्यम से लेखक ने तीन कालों की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण करने का प्रयास किया है।

2. मध्यवर्ग का चित्रण :- 'थके पांव' उपन्यास की कथावस्तु समाज के मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखती है। लेखक ने इस वर्ग की विभिन्न पारिवारिक समस्याओं का चित्रण किया है। बाबू रामचन्द्र से लेकर मोहन तथा किशन सभी सदस्य विभिन्न समस्याओं से जूझते हैं। रामचन्द्र अपनी बेटी सुधा के विवाह के लिए धन इकट्ठा करने की चिन्ता में है। केशवचन्द्र के पास परिवार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पैसा नहीं है। किशन मध्यवर्गीय समस्याओं से परेशान होकर घर से चला जाता है और रुपया कमाने के चक्कर में रहता है। मोहन को तपेदिक हो जाती है, तो उसके इलाज के लिए उसकी पत्नी को अपने गहने बेचने पड़ते हैं। माधुरी परिवार की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए किसी न किसी उलझन में घिरी रहती है। मध्यवर्ग के गृहस्थ जीवन का सही चित्रण करते हुए लेखक ने पात्रों की विभिन्न समस्याओं का चित्रण भी किया है। उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध जिस समय से है, उन दिनों भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों का प्रचलन था। केशवचन्द्र का परिवार भी संयुक्त परिवार है, जिसमें उसके विवाहित बेटा–बहू भी साथ ही रहते हैं। मध्यवर्ग के पास आमदनी के साधन सीमित होते हैं और खर्चा अधिक। इस वर्ग के लोग किस प्रकार उम्र भर रुपये पैसे का अभाव सहते हैं, इसका चित्रण इस उपन्यास में हुआ है।

3. पारिवारिक समस्याओं का चित्रण :- इस उपन्यास में उस समय का चित्रण किया गया है, जब स्त्रियों की शिक्षा को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था और उन्हें केवल दहेज के बल पर ब्याह दिया जाता था। लोग अपने बेटों के भविष्य की परवाह न करके केवल दहेज के लालच में उनका विवाह कर देते थे। मोहन पढ़ाई में होशियार है और आई.ए.एस. की परीक्षा में बैठने के लिए कठिन मेहनत करता है, परन्तु उसके पिता उसका विवाह कर देते हैं। विवाह का कारण है दहेज में मिलने वाले पाँच हज़ार रुपये जिससे वो नया मकान खरीदना चाहते हैं। उन्हें अपनी बहू लक्ष्मी का साक्षात् रूप नज़र आती है। मोहन पढ़ाई पूरी न होने के कारण कभी अच्छी नौकरी नहीं पा सकता और चिन्ता में घुल–घुल कर बीमार हो जाता है। उसका इलाज भी उसकी पत्नी के गहने बेचकर होता है। इस प्रकार की पारिवारिक समस्याएं मध्यवर्ग का अभिन्न अंग हैं, जिसका लेखक ने बड़ा जीवन्त वर्णन किया है। इसी प्रकार केशवचन्द्र अपनी बेटी माया का विवाह एक दुहाजू से करने को तैयार हो जाते हैं, जो तीन बच्चों का बाप है। इसका कारण यह है कि वह बिना दहेज के विवाह करने को तैयार है।

लेखक ने गृहस्थ जीवन की बहुत सी समस्याओं का चित्रण भी किया है, जो उस समय को प्रस्तुत करता है, जिस समय यह उपन्यास लिखा गया। जैसे रीति–रिवाज़ों पर किए जाने वाले खर्च जिनके लिए उधार पैसा लेकर उम्र भर उसका बोझ ढोना पड़ता है।

4. पात्रों के माध्यम से परिवेश चित्रण :- उपन्यास में मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखने वाले पात्रों के रहन–सहन, वेश–भूषा, खान–पान एवं संस्कारों का चित्रण भी है, जो उनके सामाजिक परिवेश को प्रस्तुत करता है। रामचन्द्र, केशवचन्द्र झूठ, बेईमानी, रिश्वतखोरी तथा कपट में विश्वास नहीं रखते। वे सच्चाई का जीवन जीना चाहते हैं और उन्हें जीवन में कई कष्ट सहने पड़े परन्तु उन्होंने अपने आदर्शों का त्याग नहीं किया। ऐसे चरित्र एक ऐसे युग के प्रतीक हैं, जो उच्च जीवन मूल्यों को निभाने के लिए सब कुछ सहन कर लेते हैं।

5. बदलती सामाजिक मान्यताओं का चित्रण :- इस उपन्यास में लेखक ने उस समय का चित्रण किया है, जब भारतीय समाज में नई मान्यताएं विकसित हो रही थी। इनमें सबसे महत्वपूर्ण थी स्त्री शिक्षा का प्रचलन, जिसका वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। माया स्कूल की पढ़ाई पूरी करके कॉलेज जाना चाहती है, परन्तु माता–पिता उसका विवाह कर देना चाहते हैं। वह पूरे आत्म–विश्वास के साथ उन्हें यह बात समझाती है कि उसकी पढ़ाई और भविष्य विवाह से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उसके पिता उसका विवाह एक दुहाजू से करना चाहते हैं, जिसका वह डट कर विरोध करती है। इसका कारण स्त्री–शिक्षा है। वह भाई के पास बम्बई जाकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाती है। उपन्यास में एक अन्य नई मान्यता की ओर भी संकेत है, जिसमें केशवचन्द्र की बहू सुशीला नौकरी करती है। केशवचन्द्र उस समय से सम्बन्ध रखते हैं, जब स्त्री का नौकरी करना बुरा माना जाता था। सुशीला कॉलेज में पढ़ाती है और ट्यूशन भी करती है। वह अपने ससुर को कहती है कि समय आने पर स्त्री सब कुछ कर सकती है। माया भी काम करती है और अपने पिता को रुपए भेजती है। इस उपन्यास में स्त्री के शिक्षित होने एवं आत्मनिर्भर होने का संकेत है, जो भारतीय समाज के उस काल एवं परिवेश को प्रस्तुत करता है, जब इनका आरम्भ हो रहा था।

2.4.3 संरचना–शिल्प

उपन्यास में लेखक घटनाओं, स्थितियों एवं पात्रों के मनोभावों का चित्रण करता है, जिसके लिए वह जिस माध्यम का प्रयोग करता है, वह है भाषा। कथावस्तु की ज़रूरत के अनुसार यह उपन्यास की शैली भी निर्धारित करता है। पात्रों की पारस्परिक बातचीत, कथा–विकास और पात्रों के चरित्र–चित्रण के लिए महत्वपूर्ण होती है। यहाँ हम 'थके पांव' उपन्यास की संरचना पर विचार करेंगे :–

1. शैली :- यह उपन्यास वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। लेखक अपनी तरफ से सारी कहानी कहता है। यह मध्यवर्ग के एक सामान्य व्यक्ति की जीवन गाथा है, जिसमें वह बचपन से बुढ़ापे तक विभिन्न परिस्थितियों एवं संघर्षों को झेलता हुआ जीवन व्यतीत करता है। यह उसके वर्तमान जीवन की मुख्य कथा है। कहीं–कहीं लेखक ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग भी किया है। जैसे उपन्यास का मुख्य पात्र केशवचन्द्र अपने बीते हुए जीवन को याद करता है। लेखक ने कथा का वर्णन इतने सजीव रूप में किया है कि वे हमारे सामने घटती हुई प्रतीत होती है। सामान्य मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन की झांकी प्रस्तुत करने में लेखक सफल हुआ है। केशवचन्द्र, मोहन, किशन, सुशीला तथा माया के अन्तर्द्वन्द्वों को भी लेखक ने बड़ी स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है।

2. भाषा :- इस उपन्यास की भाषा अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक है। लेखक केशवचन्द्र के परिवार की घटनाओं को बड़े रोचक ढंग से और प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत करता है। प्रत्येक स्थिति का वर्णन अत्यन्त सजीव एवं सइज है। इस रचना में खड़ी बोली का स्वाभाविक रूप प्रकट हुआ है। बोलचाल के तत्सम् शब्दों का सुन्दर प्रयोग है। उपन्यास की कथावस्तु का आधार एक सामान्य व्यक्ति के संघर्षपूर्ण जीवन की गाथा कहना है जो विभिन्न संघर्षो से जूझते हुए इतना थक गया है कि उसके लिए कुछ कदम भी चल पाना असम्भव प्रतीत हो रहा है। उपन्यास के आरम्भ में लेखक इस व्यक्ति का परिचय दे देता है। उपन्यास का आरम्भ अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं रोचक है।

"लड़खड़ाते हुए पैर। ....वह चल रहा है क्योंकि उसे चलना पड़ रहा है, लेकिन जैसे पैर चलना ही नहीं चाहते। जीवन में गति होती है, उस गति को प्रेरणा, भावना की तीव्रता से मिला करती है, लेकिन जैसे उसके अन्दर वाली समस्त भावना कुंठित हो गई है और एक अजीब तरह की गतिहीनता भर गई है उसके अन्दर जो पैरों को आगे बढ़ने से रोकती है। लेखक ने आगे लिखा है – "वह थक गया है, बुरी तरह थक गया है, लेकिन उसे चलते रहना है।...... चलना तो उसे होगा ही, मन कितना भी भारी हो, पैरों में कितनी भी थकावट हो।" इस व्यक्ति के थके पांवों का परिचय देने के बाद लेखक उसके जीवन की पूरी कथा कहता है। उपन्यास का ऐसा आरम्भ लेखक की अपनी विशेषता है, जिससे प्रभावित होकर पाठक अगली कथा का ज्ञान पाने को उत्सुक हो उठता है।

2.4.4 'थके पाँव' का प्रतिपाद्य

'थके पांव' भगवती चरण वर्मा का सामाजिक उपन्यास है, जिसमें मध्यवर्ग के एक परिवार के जीवन का यथार्थ चित्रण है। उपन्यास के प्रधान नायक केशवचन्द्र का जीवन संघर्षों से भरा हुआ है। वे ऐसे दफ्तर में काम करते हैं, जहां उन्हें रिश्वत का पैसा मिल सकता है, पर वे उसे कभी स्वीकार नहीं करते। उन्हें कष्टमय जीवन व्यतीत करना स्वीकार है, परन्तु वे अपने आदर्शों को नहीं छोड़ पाते। इस उपन्यास की रचना के उद्देश्य को हम कुछ शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं :–

1. उच्च जीवन मूल्यों की स्थापना

'थके पांव' उपन्यास में लेखक ने केशवचन्द्र के चरित्र के माध्यम से उच्च जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया है। हमने उपन्यास पढ़ते हुए देखा है कि केशवचन्द्र उम्र भर रुपये पैसे की तंगी सहते रहे परन्तु उन्होंने रिश्वत नहीं ली। उनके जीवन में एक समय ऐसा आया जब उन्होंने अपने बेटे के ईलाज के लिए एक हज़ार रुपये रिश्वत ली। यह उनके लिए मानसिक पीड़ा बन गई। वे स्वयं को अपराधी समझने लगे। इस रुपये को वे कहीं भी खर्च नहीं कर पाए, क्योंकि उनकी अन्तरात्मा उन्हें धिकारती रही। वे इसे पाप का रुपया समझते

हैं और अपने मालिक के पास जा कर स्वयं उसे बताते हैं। मैनेजर उनसे कहता है कि उन्होंने यह रुपया मज़बूरी की हालत में लिया है अर्थात् बेटे को बचाने के लिए लिया है। केशवचन्द्र कहते हैं – "लेकिन बचाता है पुण्य, पाप नहीं बचाया करता। मेरी बहू नौकरी करके और मेहनत करके अपने पति को बचा रही है, मैं भला क्या पाप के रुपयों से बचा सकूँगा उसे? यह पाप मुझे खा जाएगा, मुझे इसका दण्ड मिलना चाहिए।" इस पाप के प्रायश्चित के लिए वे अपनी नौकरी से त्याग–पत्र दे देते हैं। पाप की कमाई ने उनकी ईमानदारी की नौकरी छीन ली परन्तु फिर भी वे दुःखी नहीं हुए। रिश्वत के रुपयों को केशवचन्द्र किसी अनाथालय में दान करने जाता है, तो उन्हें लगता है कि उनके मन का बोझ उतर गया है।

केशवचन्द्र के जीवन की इस घटना के माध्यम से लेखक ने एक सत्य का उद्घाटन किया है कि गरीबी और अभाव बेईमानी को जन्म देते हैं, किन्तु लोग ऐसे हैं, जो बेईमानी नहीं कर पाते। ऐसे लोग आत्म–सन्तोष एवं आत्म–सम्मान से जो जीते हैं, जो मेहनत करके जो कुछ भी प्राप्त होता है, उसी से संतोष कर लेते हैं। लेखक के शब्दों में दुनिया में अधिकतर आदमी ईमानदार हैं, पर परिस्थितियों में वह बेईमान हो जाया करते हैं। कौन किस वक्त बेईमानी कर जाए इसका कोई ठिकाना नहीं। गरीबी और अभाव में सारी बेईमानी की जड़ है। केशवचन्द्र जीवन में केवल एक बार यह बेईमानी करके बेचैन हो उठता है। वह अपने आप को केवल वे जानते हैं या रामकिशोर जानता है परन्तु वे ईश्वर से डरते हैं और कहते हैं एक और जानने वाला है इस पाप को जिसे वह देख नहीं पाते, जिसे लाला रामकिशोर देख नहीं पाते। उस तीसरे की ही तो जानकारी सबसे महत्वपूर्ण जानकारी है, क्योंकि वही निर्णायक है, वही विधायक है, न्यायकर्ता है, वह दण्ड भी देता है। उसका सबसे पहला दंड है। केशव के मन में उस भयानक आशान्ति और ग्लानि का भर जाना। इसके बाद भी दंड होंगे, जिन्हें वह नहीं मानता लेकिन उनकी यातना इससे भी भयानक होगी।

केशवचन्द्र अपनी बहू सुशीला को अपने से कहीं अच्छा मानते हैं, जो स्कूल में पढ़ाकर अपने पति की सेवा के लिए धन कमाती है। उन्हें लगता है कि सुशीला अकलुष है, निष्कलंक है। केशवचन्द्र के माध्यम से लेखक ने मानव जीवन की असारता पर भी विचार किया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को अपने ढंग से जीता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अन्त भी निश्चित है और इस सत्य को जानते हुए भी हर व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण भिन्न है। इस सत्य का प्रतिपादन करते हुए लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है :–

"हरेक चीज़ का अन्त सिवा विनाश के होता क्या है? फल क्या होगा? कोई नहीं जानता, फिर भी फल की कल्पना हर व्यक्ति करता है, फल के आधार पर वह अपना जीवन ढालता है। अपने कर्मों को रूप देता है।" लेखक ने इस बात पर भी विचार किया है कि हमारे जीवन में कितने भी कष्ट आएं, हम जीवन जीने का कोई भी मार्ग अपनाएं, इतना निश्चित है कि हमें चलते रहना पड़ता है। जीवन के संघर्षों से जूझते हुए व्यक्ति थक कर टूट सकता है, फिर भी उसे जीना पड़ता है। लेखक के शब्दों में – "वह थक गया है, बुरी तरह थक गया है। लेकिन उसे चलते रहना है। जिस रास्ते को उसने अपनाया था, वह सहसा रुक गया है और फिर पीछे मुड़कर उसे दूसरा मार्ग ढूंढना है। चलना तो उसे होगा ही, मन कितना ही भारी हो, पैरों में कितनी ही थकावट हो।"

2. स्त्री सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण

'थके पांव' उपन्यास की रचना उस भारतीय समाज से सम्बन्ध रखती है, जब स्त्री–शिक्षा को अच्छा नहीं समझा जाता था। लेखक ने इस रचना में दो शिक्षित स्त्री पात्रों का परिचय दिया है, जो स्त्री शिक्षा और उसकी आत्म–निर्भरता का समर्थन करती है। लेखक का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि पढ़ी–लिखी स्त्री अपना जीवन सुखी बना सकती है और अवसर मिलने पर सब कुछ कर सकती है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति

के लिए लेखक ने माया का परिचय दिया है, जो पढ़ी–लिखी एवं आत्म–विश्वास वाली नवयुवती है। वह अपनी माँ तथा भाभी की तरह केवल गृहलक्ष्मी बनकर नहीं जीना चाहती। वह पढ़–लिख कर आत्म–निर्भर होना चाहती है और उपन्यास के अन्त में वह इस कार्य में सफल भी हुई है। वह अनमेल विवाह का विरोध करने का साहस भी करती है और अबला बनकर नहीं जीना चाहती। नारी सम्बन्धी इस समस्या पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लेखक ने लिखा है : "मध्यवर्ग की लड़कियों को शिक्षा मिलने लगी है। कॉलेज की उच्च शिक्षा का ध्येय ही क्या हो सकता है। धन का उपार्जन ही तो लड़कियों की उच्च–शिक्षा का ध्येय हो सकता है, परन्तु व्यक्ति इस ध्येय को स्वीकार करने से इन्कार करता है। स्त्री शिक्षा का एक मात्र पहलू सामाजिक स्वावलम्बन का होता है, परन्तु इस स्वावलम्बन के पहलू को अवगत एवं अचेतन अवस्था में ही व्यक्ति स्वीकार करता है, परम्परा के बन्धनों में जकड़ा हुआ पुरुष स्त्री को स्वावलम्बी नहीं देखना चाहता, अवलम्ब देना तो पुरुष का काम है। इस परम्परागत धारणा का विरोध लेखक ने स्त्री के द्वारा ही किया है। माया अपने पिता से कहती है – "जो कुछ मैं कर रही हूँ वह ठीक है बाबू जी। आपने मुझे पढ़ा–लिखा कर मनुष्य बनाया है, तो मेरे साथ आप मनुष्यता का व्यवहार कीजिए। मैं जानवर नहीं हूँ, जिसके साथ चाहा उसके साथ मुझे बांध दिया। मैं सम्पत्ति नहीं हूँ कि जिसे चाहा उसे दे दिया। मुझमें भी भावना है, मुझमें भी व्यक्तित्व है। मैं अपना हित–अहित समझती हूँ।"

उपन्यास में दूसरी शिक्षित पात्र है सुशीला। जो पूरी सूझ–बूझ से पति की बीमारी का इलाज करवाती है। घर में रुपये की कमी होने के कारण मोहन के पिता उसे सरकारी सेनीटोरियम में रखना चाहते हैं, पर सुशीला उसे वहाँ नहीं भेजती, वह अपने गहने बेचकर अकेली मोहन को अल्मोड़ा ले जाकर उसकी देखभाल करना चाहती है। वह अपने ससुर से कहती है – मैं अकेली सब कुछ कर लूँगी, आप विश्वास रखिए। समय पड़ने पर स्त्री सब कुछ कर सकती है। इतनी शिक्षा पाई है मैंने किस दिन के लिए? आप मुझे एक हज़ार रुपये ला दीजिए, उसके बाद की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर।" इस संदर्भ में लेखक ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है – "जिस समाज और जिस परम्परा में वह (केशव) पला था, वहाँ स्त्री अनपढ़, असमर्थ और विवश होती थी। वहाँ स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं किया जाता था और केशव की समझ में नहीं आ रहा था कि स्त्री का भी एक सामाजिक अस्तित्व है, जो पुरुष की भांति ही महत्वपूर्ण है।"

लेखक ने स्त्री सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण का प्रतिपादन करते हुए शिक्षित पात्रों की प्रशंसा भी की है। माया उसकी माँ माधुरी और केशवचन्द्र सभी सुशीला की प्रशंसा करते हैं और यह मानते हैं कि पढ़ी–लिखी होने के कारण ही वह इतनी कुशल है।

2.4.5 सारांश

इस पाठ में आपको 'थके पांव' उपन्यास में चित्रित परिवेश का परिचय दिया गया है और साथ ही इसके संरचना–शिल्प पर विचार किया गया है। यह उपन्यास मध्यवर्ग के एक परिवार के जीवन से सम्बन्ध रखता है। लेखक ने पात्रों के चरित्र एवं स्वभाव के माध्यम से एक साधारण परिवार की स्थिति का सजीव वर्णन किया है। मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने एक सामान्य मानव के जीवन की उस अवस्था को उभारने का प्रयत्न किया है, जिसमें वह स्वयं को असहाय पाता है। जीवन के संघर्ष उसे बुरी तरह से परास्त कर देते हैं और उसे लगता है कि वह अपने 'थके पांवों' से आगे नहीं बढ़ सकेगा।

2.4.6 बोध प्रश्न

1. 'थके पांव' उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध समाज के किस वर्ग से है?

2. इस उपन्यास में किस प्रकार का परिवेश–चित्रित हुआ है?
3. 'थके पांव' उपन्यास में चित्रित परिवेश में किस नये सामाजिक परिवर्तन का संकेत है?
4. इस उपन्यास की भाषा किस प्रकार की है?
5. यह उपन्यास किस शैली में लिखा गया है?
6. 'थके पांव' उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य क्या है?
7. इस उपन्यास में स्त्री जीवन से सम्बन्धित किस समस्या पर विचार किया गया है?
8. जीवन सम्बन्धी विभिन्न संदेश देने के लिए लेखक ने किस पात्र को चुना है?
9. स्त्री शिक्षा का समर्थन करने के लिए लेखक ने किन दो स्त्री पात्रों का परिचय दिया है?
10. इस उपन्यास की कथा में लेखक का उद्देश्य समाज के किस वर्ग की समस्याओं का प्रतिपादन करना है?

सप्रसंग व्याख्या

यहां हम 'थके पांव' उपन्यास में आए कुछ महत्वपूर्ण गद्य–स्थलों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं, जो परीक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी है :–

1. लड़खड़ाते हुए पैर..........................रोकती है।

('थके पांव' पृष्ठ 5 भगवती चरण वर्मा/प्रकाशक राजपाल एंड संस/संस्करण 1999)

प्रसंग :- ये पंक्तियां श्री भगवती चरण वर्मा के उपन्यास 'थके पांव' में से ली गई हैं। इस उपन्यास में लेखक ने एक मध्यवर्गीय व्यक्ति के संघर्षपूर्ण जीवन की गाथा कहने का प्रयत्न किया है। यह व्यक्ति जीवन भर विभिन्न प्रकार की कठिनाईयों एवं अभावों में जूझता इतना थक जाता है कि उसे अपने पैर बेजान लगते हैं और वह स्वयं को असहाय पाता है। इन पंक्तियों में उसके शक्तिहीन पांवों का वर्णन करते हुए लेखक कहता है :–

व्याख्या :- जीवन के संघर्षों से जूझते हुए इस व्यक्ति के पैर लड़खड़ा रहे हैं, परन्तु फिर भी वह चल रहा है क्योंकि चलते रहना उसकी मज़बूरी है। जब जीवन में गति और उत्साह होता है, तो मन की भावना भी उससे मिल जाती है। परन्तु जब मन में कोई उत्साह न हो तो मनुष्य गतिहीन हो जाता है और उसे लगता है कि वह चल भी नहीं पाएगा।

विशेष :- इन पंक्तियों में लेखक यह स्पष्ट करना चाहता है कि मनुष्य के जीवन की गति उसके मन की स्थिति पर निर्भर करती है। जब तक जीवन में खुशी और उत्साह है, वह भागा फिरता है, परन्तु जब मन निराश होता है तो वह गतिहीन हो जाता है।

2. "असल में............................है क्या?"

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक मनुष्य जीवन के विविध पहलूओं पर विचार करता हुआ कहता है कि वास्तव में गति ही जीवन का दूसरा भाग है। गतिहीन होना मृत्यु है। यह गति अथवा क्रिया संघर्ष पर आधारित है। जीवन में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करना और उनके साथ जूझना ही संघर्ष है। जो व्यक्ति स्वयं को इस संघर्ष में लगाए रखता है, उसका जीवन गतिशील रहता है।

विशेष :- इन पंक्तियों में लेखक ने जीवन में संघर्ष के महत्व को स्पष्ट किया है। जीवन के सुख–दुःख एवं

कठिनाइयों में डटकर संघर्ष करना, परिस्थितियों के साथ जूझना और निरन्तर जूझते रहना ही सच्चे अर्थों में जीना है।

3. "जीवन एक..................................खो देता है।" *(पृष्ठ 39)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक जीवन में विकट परिस्थितियों का सामना करते हुए मनुष्य की स्थिति पर विचार करता हुआ कहता है कि मनुष्य का जीवन एक निरन्तर चलने वाली लड़ाई है, जिसका केशवचन्द्र को भी लम्बा अनुभव हुआ है। जीवन में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता हुआ मनुष्य अब संघर्ष छोड़ देता है, तो वह मर जाता है। ऐसी असफलता एवं निराशा की स्थिति मनुष्य को जीवित नहीं रहने देती, क्योंकि वह मृत्यु का एक अंश है। जीवन कभी गतिहीन नहीं होता। यही कारण है कि जीवन भर मनुष्य हज़ारों कठिनाइयों के होते हुए भी हंसता–गाता रहता है।

विशेष :- इन पंक्तियों में लेखक ने जीवन की एक बहुत बड़ी सच्चाई पर विचार किया है कि मनुष्य जीवन में अनेकों कमियों को सहन करके भी खुश होकर जीता है। यह जीवन की पहचान है। यदि वह दुःखों से घबराकर जीना छोड़ दे तो वह एक मृत व्यक्ति के समान हो जाएगा। जब तक जीवन है, उसमें गति भी होगी। यदि मनुष्य संघर्ष न करके गतिहीन हो जाएगा, तो वह मृत कहलाएगा।

4. "जिसे लोग..................................साहस नहीं है।" *(पृष्ठ 66)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक मध्यवर्ग के लोगों के जीवन पर विचार करते हुए कहते हैं कि इस वर्ग के लोगों को जीवित रहने के लिए एक बड़ा भयानक जीवन संघर्ष करना पड़ता है। समाज का यह वर्ग स्वयं को सम्पन्न, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का पोषक बताने का प्रयत्न करता है। अपने अभावों के कारण यह वर्ग सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को निभाने में असमर्थ होता है, परन्तु उसे यह दिखावा करना पड़ता है कि वह उच्च जीवन–मूल्यों को साथ लेकर जी रहा है। अभावों में जूझता यह वर्ग न तो मान्यताओं को निभा सकता है और न ही उनका त्याग करने का साहस करता है।

विशेष :- इस गद्य खण्ड में लेखक ने मध्यवर्ग की मज़बूरी का वर्णन किया है जो विभिन्न सामाजिक और नैतिक मान्यताओं को बड़ी कठिनाई से झेलता रहता है। यह वर्ग इतना समर्थ भी नहीं है कि किसी परम्परा या मान्यता का विरोध कर सके।

5. "वर्तमान पीढ़ी..................................कटु सत्य है।" *(पृष्ठ 41)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक ने नई और पुरानी पीढ़ी की वास्तविक स्थिति पर विचार किया है। लेखक के अनुसार वर्तमान पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी का भविष्य बनाने के लिए अपनी सारी–शक्ति लगा देती है। उसके पास केवल उसका अतीत बच जाता है, जो मृत्यु का दूसरा नाम है। जब से सृष्टि बनी है, यह क्रम निरन्तर चल रहा है। यह एक कड़वा सत्य है, जो कुरूप है, परन्तु हर पीढ़ी को यह भोगना पड़ता है। यह एक अटल सच्चाई है और हर व्यक्ति को इसे भोगना पड़ता है।

विशेष :- इस गद्यांश में लेखक ने एक सत्य पर विचार किया है कि एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी की निर्माता होती

है और इसके लिए वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करती है।

6. "घुटकर तिल-तिल कर................................करते हैं।" *(पृष्ठ 82)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक ने मध्यवर्ग की स्थिति पर विचार करते हुए कहा है कि असंख्य अभावों में जीता हुआ मध्यवर्ग घुटकर तिल–तिल कर मरता रहता है। यह स्थिति उसे कायर बना देती है। ऐसे लोगों से समाज का अस्तित्व बना हुआ है। इस वर्ग में से थोड़े से लोग साहस करके ऊपर उठते हैं और अपना एक अलग वर्ग बना लेते हैं। ऐसे लोग मध्यवर्ग पर अपना शासन चलाते हैं।

विशेष :- इस गद्य खण्ड में लेखक ने मध्यवर्ग में से उभरने वाले कुछ समर्थ एवं धनी लोगों के वर्ग की ओर संकेत किया है। जो उच्च वर्ग के लोग कहे जाते हैं। ऐसे लोग मध्यवर्ग पर हुकूमत करते हैं।

7. "स्त्री शिक्षा................................काम है।" *(पृष्ठ 90)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक ने समाज में स्त्री की स्थिति पर विचार किया है। लेखक की मान्यता है कि स्त्री शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य है उसे आत्म–निर्भर बनाना। भारतीय पुरुष परम्पराओं से प्रभावित होकर समझता है कि स्त्री को सहारा देना उसका काम है। स्त्री आत्म–निर्भर हो ही नहीं सकती। पुरुष उसके इस रूप को मान्यता नहीं दे सकता।

विशेष :- जिस समय इस उपन्यास की रचना हुई थी, उस समय स्त्री शिक्षा को असामान्य समझा जाता था। इस दृष्टि से लेखक ने स्त्री के स्वावलम्बी होने के प्रति पुरुष की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है।

8. "घर बिना स्त्री................................है उसे।" *(पृष्ठ 91)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक ने उपन्यास की स्त्री–पात्र माया के द्वारा स्त्री के महत्व पर विचार किया है। माया के विचार से पुरुष स्त्री को आश्रय देकर उस पर कोई अहसान नहीं करता। स्त्री का भी अपना महत्व है, क्योंकि घर तो उसी से बनता है। स्त्री घर बनाती है, बच्चों को जन्म देती है। वह सृष्टि और ममता है। वह पुरुष का संरक्षण भी चाहती है, परन्तु पुरुष को भी स्त्री का आश्रय चाहिए तभी उसका घर कायम रह सकता है।

विशेष :- इन पंक्तियों में लेखक ने बड़े सुन्दर शब्दों में यह स्पष्ट करना चाहा है कि स्त्री एवं पुरुष दोनों ही अपना–अपना महत्व रखते हैं। यदि पुरुष स्त्री को संरक्षण देता है, तो स्त्री भी उसका घर बनाती है और उसके जीवन को खुशहाली से भर देती है।

9. "यह हाथ................................करना ही था।" *(पृष्ठ 110)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक ने केशव की दयनीय अवस्था का वर्णन किया है। मोहन के इलाज के लिए दूसरों से पैसा मांगना, दूसरों के सामने हाथ फैला कर अपनी मज़बूरी दिखाना केशव को बहुत कष्टदायी एवं अपमानजनक लगता है। यह उसके लिए एक कड़वा अनुभव है लेकिन इस अपमान को सहने के लिए वह विवश है।

विशेष :- लेखक ने इस गद्यांश में एक सत्य का प्रतिपादन किया है कि किसी से कुछ मांगना बहुत ही कष्टदायी होता है। व्यक्ति के आत्म–सम्मान पर गहरी चोट लगती है।

10. "दुनिया में................................जड़े हैं।" *(पृष्ठ 121)*

प्रसंग :- वही

व्याख्या :- इन पंक्तियों में लेखक ने मनुष्य के व्यवहार के कुछ महत्वपूर्ण पहलूओं पर विचार किया है। लेखक के अनुसार दुनिया में अधिकतर आदमी इमानदारी से जीना चाहते हैं, परन्तु हालात उन्हें बेईमानी करने के लिए मज़बूर कर देते हैं। गरीबी और आभावों से प्रभावित होकर मनुष्य कब बेईमानी करने लगे, यह कहा नहीं जा सकता।

विशेष :- लेखक ने इन पंक्तियों में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि मज़बूरी में व्यक्ति अपने आदर्श भूल कर कुमार्ग पर चल पड़ता है। यह मानव स्वभाव की एक सामान्य कमज़ोरी है, जो ईमानदार लोगों को बेईमान बना देती है।